श्रीमद् भगवद्गीता

आमुख

तरूणावस्था में मुझ नव-वयस्क को श्री गीता पढ़ने में भय लगता था. मेरा मानना था कि गीता की शिक्षाऐं कुछ ज्यादा ही आदर्शवादी थीं जोकि हमारे कंप्यूटर और अंतरिक्ष युग में प्रासंगिक नहीं हो सकती थीं. मेरा यह भी मानना था कि मोक्ष उन के लिए था जो जीवन से कुछ और पाने की आशा छोड़ बैठै थे.

अपने जीवन की अर्द्ध-शताब्दी पर मैंने महसूस किया कि मेरे जन्म के समय आम औसत आयु लगभग ५७ वर्ष थी. ५५ वर्ष की आयु में सेवा-निवृत्त हो कर लोग कुछ ही वर्षों में परलोक सिधार जाते थे. ऐसे में मेरा ५० वर्ष का होने पर भी स्वस्थ और तन्दरुस्त रहना एक उपलब्धि ही थी. उस सोच ने मुझे प्रफुल्लित कर दिया. मैंने शाक सब्जियों का सेवन बढ़ा दिया और भविष्य की योजना का चिन्तन प्रारम्भ कर दिया. मेरे पूर्व सस्कारों नें मुझे हिन्दुत्व की ओर मोड़ दिया, परन्तु मुझे न तो हिन्दुओं द्वारा पूजित देवताओं के बारे में कुछ पता था और न उनके विभिन्न अवतारों के बारे में. अपने असंख्य प्रश्नों के उत्तर पाने के लिये मैंने मनीषियों से जिज्ञासा प्रकट की. मुझे कहा गया कि मैं एक प्रसिद्ध स्वामी व अमेरिका के एक संवाददाता के मध्य हुए संवाद का रूपांतर पढ़ूं . इस रूपांतर को पढ़ कर मुझे प्रतीत हुआ कि स्वामी जी अमेरिका की जीवन शैली को भारतीय जीवन शैली से हेय सिद्ध करने का प्रयास कर रहे थे. मझे प्रतीत हुआ कि स्वामी जी अमेरिकी जीवन शैली को समझ नहीं पाये थे. मैंने श्री

गीता की एक प्रति खरीदी, तथा एक प्रति इंटरनैट से उतार ली जिसके सारे संस्कृत के श्लोक मैंने निकाल दिए. मुझे यह अनुवाद भी क्लिष्ट प्रतीत हुआ. मैं इसे ठीक से समझ भी नहीं सका. शायद अनुवादक महोदय ने बहुत भारी शब्द इस्तेमाल किये थे. यह भी हो सकता है कि अंग्रेजी भाषा पर उनका बहुत अच्छा अधिकार रहा हो. कुछ भी हो, इस अनुभव ने मुझे हतोत्साहित कर दिया. मैं यह भी सोचने पर बाध्य हो गया कि,अब मेरा उद्धार तो सम्भव न हो सकेगा.

समय बीतता गया. श्रीमद् भगवद् गीता को जानने की मेरी इच्छा प्रबल होती गई. साथ ही एक सरल व आम इंग्लिश भाषा में गीता को ढूढ़ं निकालने की इच्छा भी प्रबल होती गई. मेरा सौभाग्य था कि अंतर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी द्वारा संचालित पत्राचार कार्यक्रम का भी मुझे पता लगा. अंततः मैं श्री गीता ज्ञान की सुहानी रूहानी गोदी की ओर चल ही पड़ा.

श्री गीता के अनुसार–

- फल की चिन्ता न करते हुए सबको अपनी भरपूर क्षमता से कार्य करना चाहिए. उदाहरण स्वरूप एक किसान यह तो तय कर सकता है कि वह अपनी भूमि पर क्या और कैसे उगाए, परन्तु फसल होगी या नहीं या कम होगी या ज्यादा, इस पर उस का स्वामित्व नहीं है. फसल बोनी भी पड़ेगी ही.
- ईश्वर को सदैव हर प्राणी में समान रूप से जानो.
- सब जीवों के प्रति समभाव रखो.

साथ ही मानव के जीवन के चार उद्देश्य हैं–

- अपना कर्त्तव्य-पालन करना.
- धर्नोपार्जन करना.
- भौतिक व ऐन्द्रिय सुखों का, इन्द्रियों को वश में रखते हुए, उपभोग करना, और
- मुक्ति प्राप्त करना.

हमें चित्त की शान्ति, आनन्द व अक्षोभ प्रदान करना ही श्री गीता का (महान्) उद्देश्य है. कोई धार्मिक अनुष्ठान करने का प्रस्ताव गीता नहीं रखती. श्री गीता के अनुसार विश्व को विभिन्न प्रकार के धर्मों, सम्प्रदायों व देवी-देवताओं की आवश्यकता है, ताकि मनुष्यों की विभिन्न प्रकार की असंख्य आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके.

"खाओ-पियो-मस्त रहो", एक आधुनिक कहावत है. किन्तु इस स्थिति को पाने का मूल-मंत्र हमें गीता ही प्रदान करती है. गीता का संदेश हमें सभी धर्मों व राष्ट्रों की परिधियों से आगे ले जाता है.

डाक्टर रामानन्द प्रसाद, जोकि "अंतर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी" के संस्थापक हैं, व सरल इंग्लिश भाषा में "श्रीमद् भगवद्गीता" के लेखक हैं, ने मुझे श्री गीता के संदेश को सांगोपांग समझने में बहुत सहायता की. मैं उनका बहुत आभारी हूं कि उन्होंने मेरे जीवन को गीता-निधि से सम्पन्न व समृद्ध कर दिया. डाक्टर रामानन्द प्रसाद ने दया-वश अपना अमूल्य समय दे कर यह भी सुनिशचित किया कि यह लघु ग्रन्थ भगवान श्रीकृष्ण की दिव्य वाणी "श्रीमद् भगवद्गीता" का ठीक-ठीक प्रतिपादन कर सके. इस महान् कार्य के लिये मैं उन का ऋणी रहूंगा. इस ग्रंथ का मुख्य

आधार तो डाक्टर प्रसाद की कृति ही है, परन्तु इसके इस रुप में आपके समक्ष रखने में मैंने अनेक विद्वान लेखकों की कृतियों व टीकाओं का अवलम्बन लिया है. उन सभी विद्वान मनीषियों का मैं ह्रदय से आभार प्रकट करता हूं.

इस ग्रन्थ में कोष्ठकों में दिये गए अंक (xx.xx) इसी क्रम में मूल श्री गीता के अध्यायों व श्लोकों का संदर्भ दर्शाते हैं. यदि इस लघु ग्रन्थ के रूप में मेरा यह तुच्छ प्रयास आपके ह्रदय में कुच्छ हिलोर, कुच्छ उत्कंठा जाग्रत करे तो कृपया आइये हमारी वेब-साइट पर जहाँ आापका सहर्ष स्वागत है–

www.gita-society.com

or

www.gita4free.com

विनीत

हैरी भल्ला

प्रार्थना

भगवान श्रीकृष्ण और महात्मा अर्जुन के अमृतरूप संवाद का यह रूप भगवान की इच्छानुसार, उन्हीं की शक्ति से सम्पन्न, उन्हीं कृपानिधान के चरण-कमलों में सादर समर्पित है. प्रभु इसे स्वीकार करने की कृपा करें

हिन्दी संस्करण का आमुख

मैं प्रबुद्ध पाठक को यह निवेदन करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि अनुवादक को किसी प्रकार के हिन्दी अनुवाद का कोई भी अनुभव नहीं हैं. ऐसे में स्वाभाविक है, कि यह प्रयास विद्वान पाठकों की कसौटी पर खरा न उतरे, और इसमें व्याकरण व भाषा आदि की बहुत अशुद्धियाँ हों. साहित्य के क्षेत्र में पहला कदम रखते ही मुझे प्रभु का गुण-गान करने का अति दुर्लभ अवसर मिला है, ऐसे में मुझे पूर्ण विश्वास है, और करबद्ध प्रार्थना है, कि ज्ञानी व दयालु पाठक मेरी चपलता पर ध्यान न दे कर मुझे क्षमा करेंगे, और मेरा मार्ग-दर्शन करने की कृपा करेंगे.

मैं यह भी निवेदन करना चाहता हूं कि मूल अंग्रेजी संस्करण के पाठ में सम्मिलित श्लोकों की अपेक्षा, इस हिन्दी पाठ में मूल संस्कृत पाठ से कुछ और श्लोकों को भी सम्मिलित कर लिया गया है, ताकि हिन्दी भाषी पाठकों को श्रीकृष्ण भगवान के विराट् रूप की पूरी झांकी मिल सके. साथ ही कोष्ठकों में श्लोक संख्या के अतिरिक्त कुछ और सन्दर्भ भी हिन्दी भाषा के पाठकों के लिए इस पाठ में दिऐ

गऐ हैं. मेरा यह मानना है कि इससे इस प्रयास की उपादेयता बढ़ जाऐगी. कहीं कहीं छोटे फॉन्ट में कुछ टिप्पणियाँ भी देने का साहस किया गया है, जिससे ग्रन्थ की रोचकता बढ़ सके, परन्तु कलेवर ना बढ़ सके. शायद समस्त प्राप्य गीता भाष्यों में इसी संक्षिप्त हिंदी रूपांतर में पहली बार तालिकाऐं भी दी गई हैं, जिससे सारी सम्बंधित जानकारी एक ही स्थान पर उप्लब्ध हो सके. अनुवाद करने में, तथा भावों को समझने में विद्वान लेखकों के जिन ग्रंथों की सहायता ली गई है, उन की सूची भी पाठकों के लाभ के लिए, अन्त में दे दी गई है. मैं उन सब दयालु विद्वानों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं और उनका सदैव ऋणी रहूंगा.

– राजीव कुमार भटनागर

श्रीमद् भगवद्गीता

(संक्षिप्त)

अध्याय १ : महात्मा अर्जुन संशय में

(श्री गीता के प्रथम ६ अध्यायों में ईश्वर ने यह व्याख्या की है, कि किन परिस्थितियों में जीव उन्हें समझ सकता है)

ईसा पूर्व ३,००० वर्ष पहले की बात है. साम्राज्य के उत्तराधिकार के लिए चचेरे भाईयों में युद्ध हुआ. दोनों ओर की सेनाओं में सगे-सम्बन्धीगण, गुरूजन, व समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे. महात्मा अर्जुन स्वयं एक प्रसिद्ध योद्धा व असाधारण धनुर्धारी थे. महात्मा अर्जुन के बचपन के सखा भगवान श्रीकृष्ण उनके सारथी बने.

युद्ध क्षेत्र में अपने सुहृदों, बान्धवों व आचार्यों आदि को युद्ध के घोर कर्म में प्रवृत्त देख कर महात्मा अर्जुन महान् आश्चर्य-मिश्रित विषाद में पड़ गए. वे कहने लगे– "हे कृष्ण, मैं युद्ध में विजय नहीं चाहता, ना राज्य और ना (युद्ध में जीत कर प्राप्त होने वाला) सुख ही चाहता हूं. जिन के लिए हमारी राज्य, भोग और सुख की इच्छा है, वे सब ही अपने-अपने प्राणों का मोह छोड़ कर युद्ध क्षेत्र में खड़े हैं". (१.३२-३३)

महात्मा अर्जुन ने कहा– हे कृष्ण, इस राज्य की तो बात ही क्या है, चाहे मुझे त्रिलोक का राज्य भी मिले, तो भी, मैं अपने अग्रजों, धर्म-गुरुओं व सम्बन्धियों को, जो हमें मारने को तत्पर हैं, नहीं मारना चाहता. (१.३४-३५) ऐसा

कहकर शोकातुर अर्जुन धनुष-बाण का त्याग करके, युद्ध-भूमि में रथ के मध्याभाग में बैठ गये. (१.४७)

अध्याय २ : ब्रह्मविद्या योग

महात्मा अर्जुन ने कहा– हे कृष्ण, इन महानुभाव गुरूजनों को मार डालने की अपेक्षा इस लोक में मैं भिक्षा का अन्न खाना अधिक कल्याणकारी समझता हूं. उन महानुभाव गुरूजनों को मारने पर इस लोक में मैं रूधिर से सने हुए अर्थ और कामरूप भोगों को ही तो भोगूंगा. (२.०५) महात्मा अर्जुन ने आगे कहा कि हम यह नहीं जानते कि हमारे लिए युद्ध करना या न करना, इनमें से क्या श्रेष्ठ है. हम यह भी नहीं जानते कि हम विजयी होंगे कि वे. हमें तो यह इच्छा भी नहीं करनी चाहिए कि उन्हें मार कर हम जीवित रहें (२.०६).

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– (हे अर्जुन) तू जिनके लिए व्यथित है, वे इस योग्य नहीं हैं. ज्ञानीजन, जीवित व मृत, दोनों के लिए ही शोक नहीं करते. (२.११) (क्योंकि) ऐसा समय कभी नहीं रहा, जब मैं या ये सब नहीं थे. ना ही ऐसा समय कभी होगा, जब मैं, या ये सब लोग नहीं रहेंगे. (२.१२). मृत्यु के पश्चात् आत्मा एक नया शरीर धारण कर लेती है. (२.१३) अदृश्य आत्मा सदैव अमर है और दिखाई देने वाला शरीर सदैव नाशवान है. (२.१६) आत्मा सम्पूर्ण ब्रह्मांड में नित्य व्याप्त है और अविनाशी है. इसे कोई मार नहीं सकता (२.१७) इस नाशरहित, अप्रमेय व नित्यरूप आत्मा का शरीर ही केवल नाशवान है. अतः हे अर्जुन तू युद्ध

कर. (२.१८) आत्मा न जन्म लेता है, न मृत्यु को प्राप्त होता है. आत्मा सदा अजन्मा, नित्य, सनातन व पुरातन है. शरीर का नाश होने पर भी आत्मा का क्षय नहीं होता. (२.१९-२०). जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नूतन वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार आत्मा एक शरीर को त्याग कर नया शरीर ग्रहण करता है. (२.२२)

यदि तुम यह भी सोचते हो कि यह भौतिक शरीर निरन्तर जन्म लेता व मृत्यु को प्राप्त होता है, तब भी यह तुम्हारे लिए शोक का विषय नहीं होना चाहिए (क्योंकि) जिसका जन्म होता है, उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है, तथा जिसकी मृत्यु हो गई है, उसका पुनर्जन्म भी अवश्य होगा. इसलिए इस अटल सत्य पर शोक नहीं करना चाहिए, वरन् दिवंगत आत्मा के मोक्ष के लिए प्रार्थना करनी चाहिए. (२.२६-२७)

(हे अर्जुन) युद्ध ही तुम्हारा कर्त्तव्य है, जिससे विमख होना तुम्हें शोभा नहीं देता. एक योद्धा के लिए (वैसे भी) धर्मरक्षार्थ-युद्ध से बढ़कर और कोई कल्याणकारी मार्ग नहीं है. (२.३१) अपने आप प्राप्त हुए इस युद्ध को, और (इस युद्ध के द्वारा) अनायास ही खुलने वाले स्वर्ग के द्वार को (कोई) भाग्यवान योद्धा ही प्राप्त कर पाते हैं. (२.३२) धर्म की स्थापना हेतू युद्ध करना, अधिकार प्राप्त करने के लिए किए गए युद्ध करने से, सर्वथा बेहतर है.

किन्तु तू यदि इस धर्मयुद्ध से विमुख होगा तो अपने कर्त्तव्य से गिर जायेगा, अपकीर्ति को प्राप्त होगा व पाप का भागी होगा. लोग तुम्हारे अपयश की सदैव चर्चा करेंगे. (हे अर्जुन) कीर्तिवान पुरूषों के लिए अपकीर्ति मृत्यु से भी बढ़कर होती है (२.३३-३४) यदि तुम इस युद्ध में वीरगति को

प्राप्त हुए, तो स्वर्ग में जाओगे और यदि विजयी हुए तो पृथ्वी का राज्य भोगोगे. इसलिए, हे अर्जुन दृढ़ निश्चय के साथ युद्ध में सन्नद्ध हो जाओ. (२.३७) केवल अपने निहित कर्त्तव्य को सोच-समझ कर भली-भाँति युद्ध कर और हार-जीत, लाभ-हानि, जय-पराजय का विचार न कर. यदि तू इस प्रकार भली-भांति सोच विचार कर युद्ध में प्रवृत्त होगा तो तू पाप का भागी भी नहीं होगा और कर्म-फल से भी बद्ध नहीं होगा. (२.३८)

हे अर्जुन, जो भोगों व ऐश्वर्यों में प्रीति रखते हैं व कर्मफल की आशा से अन्यान्य क्रियाओं में रत हैं, वे परमात्मा के प्रति निश्चयात्मक बुद्धि नहीं रख सकते. (२.४४) हे अर्जुन तू निर्द्वन्द हो जा. श्रद्धा-सम रह व विचलित न हो. भोगों में तेरी अहंता, ममता, आसक्ति व कामना ना हो. हे अर्जुन, तू निस्त्रैगुण्य हो कर (तीनों गुणों– सत्त्व, रज व तम– से रहित होकर) स्वाधीन अन्तःकरण से परमात्मा में स्थित हो जा. (२.४५) ब्रह्मज्ञान को प्राप्त हुए व्यक्ति के लिए वेदादि की उसी प्रकार कोई उपयोगिता नहीं रह जाती जिस प्रकार समुद्र-सम परिपूर्णता-प्राप्त जलाशय प्राप्त होने पर (नदी आदि) छोटे स्त्रोत की कोई उपयोगिता नहीं रह जाती. (२.४६)

केवल कर्म करना ही मनुष्य के वश में है, कर्मफल नहीं. (२.४७) पराजय या हानि का भय तथा कर्त्तव्य कर्म के प्रति मोह-पूर्ण आसक्ति ही सफलता के मार्ग की बाधाएँ हैं, क्योंकि ये निरन्तर कर्त्ता के आशंकित मन को उद्वेलित करती हैं और उसकी कार्य-क्षमता पर अपना दुष्प्रभाव डालतीं हैं. एक किसान अपना खेत जोत तो सकता है, परन्तु फसल के होने या न होने पर उसका कोई वश नहीं.

तब भी (फसल की आशा से) उसे खेत तो जोतना ही पड़ेगा. (इसलिए हे धनञ्जय) तुम्हारे या किसी भी मनुष्य की कर्त्तव्य सीमा कर्म करने तक है. अपना कर्त्तव्य कर्म, पूर्ण क्षमता से, अपने चित्त को मुझ में स्थिर करके, कर्म-फल में अनासक्त होकर करते जाओ. इसी से तुम्हें शांति व सिद्धि-असिद्धि में समान बुद्धि प्राप्त होगी (क्योंकि सकाम कर्म निम्न श्रेणी का होता है). (२.४८)

भगवान श्रीकृष्ण ने आगे कहा– मन में स्थित सभी (कामनाओं) इच्छाओं (सुख देने वाले पदार्थों की आसक्ति-युक्त कामना को "इच्छा" कहते हैं. इस इच्छा के वासना, तृष्णा, आशा, लालसा, स्पृहा, आदि अनेक भेद हैं. यह अन्तःकरण का विकार है) व द्वेष का त्याग करके दुःख में उद्वेलित न होने वाला व सुख में सर्वथा निस्पृह रहने वाला मननशील मनुष्य ही स्थिर बुद्धि से युक्त होता है. (२.५७) इन्द्रियों की चंचलता बुद्धिमान पुरूष की बुद्धि भी हर लेती है. (२.६०) इसलिए सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके ही बुद्धि को मन में प्रतिष्ठित किया जा सकता है. (२.६१) (इन्द्रियों का स्तम्भन ना करने से) विषयों का चिन्तन बढ़ जाता है और मनुष्य की विषयों में आसक्ति हो जाती है. आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है, और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है. क्रोध से (कटुता, कठोरता, कायरता, हिंसा, प्रतिहिंसा, दीनता, जड़ता आदि दोष उत्पन्न होने पर) अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न होता है, मूढ़भाव से स्मृतिभ्रम, स्मृतिभ्रम से बुद्धि अर्थात ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है, और फलस्वरूप मनुष्य अपनी स्थिति से गिर जाता है. (२.६२-६३)

जितेन्द्रिय मनुष्य राग-द्वेष से रहित हो कर चित्त की ऊंची प्रसन्नता के भाव को पाता है क्योंकि वही इन्द्रियों में

अनासक्त रह कर विषयों को भोग सकता है. (२.६४) असंयमी चित्त वाले पुरूष का मन तूफान में नौका की तरह बुद्धि को हर लेता है. (२.६७) संयमी पुरूष के मन में भोग विलास उसी प्रकार कोई विकार उत्पन्न नहीं करते, जिस प्रकार नदियाँ निरन्तर समुद्र में आकर मिलती रहतीं हैं, परन्तु समुद्र सदा अपनी मर्यादा में रहता है. (२.७०)

परमात्मा व उसके मिलन से प्राप्त होने वाली परम् आनन्दमयी स्थिति को परमात्मा के पारायण होकर ही प्राप्त किया जा सकता है.

अध्याय ३ : कर्त्तव्य पथ

महात्मा अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से प्रश्न किया– हे जनार्दन, यदि आप सकाम कर्म की अपेक्षा ज्ञान को श्रेष्ठ समझते हैं तब मुझे इस युद्ध जैसे कठोर कर्म में क्यों लगाते हैं?

भगवान श्रीकृष्ण बोले– हे अर्जुन, इस लोक में आत्म साक्षात्कार के लिऐ दो मार्ग मेरे द्वारा पहले बताए गए हैं. ज्ञानियों के लिए ज्ञानयोग व शेष सभी के लिए समत्व बुद्धि से निष्काम कर्म. (३.0३) (मन, इन्द्रिय, व शरीर द्वारा होने वाली सम्पूर्ण क्रियाओं को अभिमान रहित हो कर परमात्मा में एकीभाव से स्थित होना ही ज्ञानयोग है. इसे सन्यास व साँख्य योग भी कहा गया है. कर्म में फल और आसक्ति का त्याग करके भगवदाज्ञानुसार समत्व बुद्धि से कार्य करना ही निष्काम कर्मयोग कहा गया है. इसे समत्वयोग, कर्मयोग, तदर्थ कर्म, भदर्थ कर्म, मत्कर्म आदि नामों द्वारा जाना जाता है) मनुष्य न तो केवल कर्म के त्याग मात्र से और न कर्म से विमुख होकर ही (कर्म

को आरम्भ किये बिना) निष्काम कर्मयोग को प्राप्त कर सकता है. मनुष्य को प्रकृति ने ऐसा बांध रखा है कि हर दशा में उसे कर्म तो करना ही पड़ेगा. (३.०४-०५) (इसी प्रकार भगवद् भक्ति से ज्ञानी जन कर्म फल से मुक्ति पा लेते हैं. इसलिए, हे अर्जुन, कर्मों में फल व आसक्ति का त्याग करके कर्म बन्धन से मुक्त हो जा. गीता २.५१ देखें)

मनुष्य बहुधा इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि ज्ञान-योग प्राप्त करने के लिए, वेदादि पवित्र पुस्तकों का अध्ययन, मनन व ब्रह्म विद्याओं का ज्ञान, कर्त्तव्य-यज्ञ के मार्ग के अनुसरण से बेहतर मार्ग है. परन्तु परमात्मा में एकीभाव से स्थित विद्जन अपने को किसी भी कार्य का कर्त्ता नहीं समझता. वह तो अपने को प्रकृति के हाथों की कठपुतली समझता है (और सभी कर्म परमात्मा की प्रसन्न्ता के लिए ही करता है). हे अर्जुन, ज्ञान योग व निष्काम योग दोनों ही परमात्मस्वरूप को पाने के दो मार्ग हैं यह दोनों एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं वरन् दोनों एक दूसरे के पूरक हैं. हे अर्जुन भरपूर क्षमता से अपना कर्त्तव्य-कर्म प्रभु को अर्पण करके करते जाओ. (३.०९)

भगवान श्रीकृष्ण बोले– हे अर्जुन, इस ब्रह्मांड में किंचित् मात्र भी प्राप्त हो सकने योग्य वस्तु मुझे अप्राप्त नहीं है, फिर भी मैं स्वयं कर्म करता हूं (३.२२) क्योंकि यदि मैं कर्म न करूं तो लोग मेरा अनुसरण करते हुए, अकर्मण्य हो जाऐंगे. इसके फलस्वरुप प्रजाओं का हनन हो जाऐगा, जिसका कारण मैं होऊंगा. (३.२३-२४) इसलिऐ हे अर्जुन, तू ध्याननिष्ठ हो कर, ममता रहित, संताप रहित व आशा रहित हो निष्ठा पूर्वक अपना सम्पूर्ण कर्म मुझे समर्पित कर दे. (३.३०) (सभी इन्द्रियों के भोगों में स्थित) राग व द्वेष,

कल्याण मार्ग के दो महान् अवरोध है. (३.३४) इनका त्याग करके ही मानसिक शांति व अक्षोभ को प्राप्त हुआ जा सकता है.

महात्मा अर्जुन ने पूछा कि हे कृष्ण फिर मनुष्य बलात् पाप कर्म क्यों करता है. (३.३६)

भगवान श्रीकृष्ण नें कहा– भोगों से सदा अतृप्त रहने वाला (रजोगुण से उत्पन्न) काम और उसके अतृप्त रहने पर (द्वेष से उत्पन्न) क्रोध ही इसका मुख्य कारण है. काम सदा अतृप्त रहता है व मनुष्य का नित्य वैरी है. (३.३७) इन्द्रियां, मन व बुद्धि इसके वास स्थान हैं. इन्द्रियां, मन व बुद्धि द्वारा काम ज्ञान को ढ़क कर जीवात्मा को मोहित कर देता है.(३.४०) अतएव हे अर्जुन, पहले इन्द्रियों का दृढ़ता-पूर्वक स्तम्भन करके, ज्ञान का नाश करने वाले शत्रु, काम, का दमन कर. (३.४१)

शरीर से इन्द्रियाँ, इन्द्रियों से मन, मन से बुद्धि और बुद्धि से भी अधिक शक्तिशाली आत्मा है. (३.४२) इसलिए हे महाबाहो अर्जुन, सर्व शक्तिमान् आत्मा को वैराग्य व अभ्यास द्वारा जानकर महान् बलवती बुद्धि द्वारा कामरूपी शत्रु का विनाश कर. (३.४३) (कठोपनिषद ३-१० भी देखें)

अध्याय ४ ः ज्ञानकर्म सन्यास-योग का मार्ग

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– तुम्हारे और मेरे अनेकानेक जन्म हो चुके हैं. मुझे उन सब का ज्ञान है, परन्तु तुम्हे नहीं है. (४.०५)यद्यपि मैं नित्य, अजन्मा, अविनाशी व सब प्राणियों का ईश्वर हूं, तथापि अपनी प्रकृति को अपने आधीन करके अपने आदि दिव्य रूप में प्रकट होता हूं. (४.०६) हे अर्जुन,

जब भी और जहां भी धर्म का पतन और अधर्म की वृद्धि होने लगती है, तब तब मैं अवतार लेता हूं (४.०७) भक्तों का उद्धार करने, दुष्टों का विनाश करने और धर्म की पुनर्स्थापना हेतू मैं (हर युग में) प्रकट होता हूं (४.०८)

मनुष्य विभिन्न भावों से मेरी अर्चना करते हैं और मैं उनकी इच्छा के अनुरूप उन्हें फल प्रदान करता हूं. (४.११) परन्तु वे जितेन्द्रिय मनुष्य, जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, और जो यह जानते हुऐ कर्म करते हैं कि वे कर्मों के फल को किसी प्रकार भी प्रभावित नहीं कर सकते, कर्म करते हुऐ भी उनसे अलिप्त रहते हैं और इस प्रकार पाप के भागी नहीं बनते. (४.२१) त्यागी मनुष्य जो स्वतः प्राप्त होने वाले लाभ से सतुंष्ट रहता है, और किसी प्रकार के द्वन्द, जैसे हार-जीत, सफलता असफलता आदि में अधीर नहीं होता तथा ईर्ष्यालू नहीं है, वह कभी भी कर्म बन्धन मे नहीं फंसता. (४.२२)

लोग विभिन्न प्रकार (के उद्देश्यों) से हवनादि कर्म किया करते हैं, परन्तु भगवद्प्राप्ति तो उन्हीं को होती है, जो चित्त से सर्वदा परमात्मा में लीन रहते हैं व सम्पूर्ण संसार को ब्रह्ममय ही मानते व समझते हैं अर्थात प्रत्येक जन व वस्तु में ब्रह्म का ही स्वरूप देखते हैं. (४.२४) आत्म-ज्ञान का अमृत, जो किसी भी वस्तु के त्याग व दान आदि से कहीं उच्च है, तो उन्हे ही प्राप्त है, जो निष्काम भाव से सेवा-पूजा में रत रहते हैं. मन की वृत्तियों का दमन व बुद्धि की निमर्लता द्वारा ही अंततःगोत्वा अध्यात्म के परम् ध्येय, परमात्मा, से मिलन हो सकता है. (४.३३)

उस गुह्य विज्ञान को जानने के पश्चात्, हे अर्जुन, तुम फिर कभी मोहित नहीं होओगे. अब से तुम सम्पूर्ण जीवों को, जो सब मेरे ही अंश हैं, अपने में ही देखोगे. (४.३५)

घोर पापी भी इस ब्रह्मज्ञान रूपी नौका द्वारा पाप रूपी समुद्र को निश्चय ही लाघँ सकता है (४.३६) इस संसार में तत्त्वज्ञान के समान (अन्तःकरण को) शुद्ध करने वाला निस्संदेह कुछ भी नहीं है. उस तत्त्वज्ञान को, ठीक समय आने पर, कर्मयोगी अपने आप प्राप्त कर लेता है. (४.३८) (४.३८) वह, जो परमात्मा के प्रति श्रद्धावान है, सावधान होकर साधन पारायण रहता है, और जितेन्द्रिय है, इस ब्रह्म-ज्ञान को शीघ्र ही प्राप्त करके, परम शान्ति व मोक्ष को प्राप्त होता है. (४.३९) (परन्तु विवेकहीन, श्रद्धारहित और शंकालु मनुष्य का पतन हो है. ना तो वह इहलोक, ना परलोक, और ना ही सुख प्राप्त कर पाता है. (४.४०) इसलिए हे भरतवंशी अर्जुन, अपने हृदय में स्थित अज्ञान से उत्पन्न संशय को दूर कर दे. (४.४२) (टिप्पणी– कुछ श्रद्धा, कुछ दुष्टता, कुछ संशय, कुछ ज्ञान. घर का रहा ना घाट का, ज्यों धोबी का ज्ञान??)

अध्याय ५ : त्याग का मार्ग

महात्मा अर्जुन ने पूछा– हे कृष्ण, आप कर्म त्यागने व कर्म करने, दोनों का उपदेश देते हैं. कृपया मुझे समझाइये कि इन दोनों में से कौन सा मार्ग श्रेष्ठ है. (५.०१) भगवान श्रीकृष्ण नें कहा– हे अर्जुन, आत्म-ज्ञान व निष्काम कर्म, दोनों ही मार्ग मुझ तक पहुचँते हैं, परन्तु इन दोनों में निष्काम कर्म अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि इस मार्ग का अनुसरण

अधिक सरलता से किया जा सकता है. (५.०२) बुद्धिमान मनुष्य कर्मसन्यास (आत्मज्ञान) व निष्काम कर्म (कर्म-योग) को एक दूसरे से भिन्न नहीं समझते और शुद्ध भाव से, अलिप्त रह कर कर्मफल में अनासक्त हो कर, सभी कार्यों को करते हैं. त्याग का अर्थ संसार छोड़ना नहीं है. (५.०४) निष्काम कर्म का ध्येय कर्मफल की इच्छा का त्याग करके साधा जाता है. केवल वही सच्चा त्यागी व ज्ञानी है, जो–

- फल की चिन्ता न करते हुऐ, सभी कार्य प्रभु-अर्पण करते हुऐ करता है
- विषयों का उपभोग भी कर्त्तव्य स्वरूप ही करता है
- सभी जीवों में परमात्मा का अशं जान कर पशु आदि में भी एक ही आत्मा के दर्शन करता है और सब भूतों का दुःख अपना ही दुःख समझता है. (संत नामदेव को एक बार एक भयानक भूत ने अचानक सामने आ कर डराने का प्रयत्न किया. संत सभी प्राणियों में परमात्मा ही को देखते थे. भूत को देखते ही बोल उठे– भले पधारे लम्बक नाथ, धरनी पाँव स्वर्ग लौं माथा, जोजन भर के लम्बे हाथ, सिव सनकादिक पार न पावें, अनगिन साज सजावें साथ, नामदेव के तुम हौं स्वामी, कीजै मोको आज सनाथ. परमात्मा को आना पड़ा, और भूत का भी बेड़ा पार हो गया)
- प्रिय पदार्थ को पाकर हर्षित या अप्रिय पाकर भी खिन्न नहीं होता, और दुःख और

सुख में आवेशित या उद्विग्न ना होकर समान भाव से स्थिर रहता है

- जो ब्रह्मानन्द में सदा लीन है और उस आनन्द को अपने अन्तर में नित्य संजोए है और आत्मज्ञान में सदा सुखी व लीन है
- सदा निज स्वार्थ से ऊपर उठ कर कार्य करता है
- जिसमें किसी के भी प्रति मोह या घृणा का सर्वथा अभाव है, और
- जो ब्रह्मज्ञान में निरन्तर लीन है, और सदा सच्चिदानन्द का चिन्तन करता है– ऐसा व्यक्ति कभी कर्म-बन्धन में नहीं फँसता व ब्रह्मानन्द को प्राप्त करता है.

ईश्वर कभी न तो कर्मों का सृजन करते हैं, और न कभी कर्म करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं. वे कभी कर्म फल की रचना भी नहीं करते. यह सब तो प्रभु की माया शक्ति, प्रकृति माँ, द्वारा प्रदत्त गुणों द्वारा सम्पन्न किया जाता है. (५.१४)

अध्याय ६ : ध्यान-योग का मार्ग

भगवान श्रीकृष्ण बोले– केवल अग्नि का त्याग करने वाला या क्रियाओं का त्याग करने वाला संन्यासी नहीं होता (६.०१). ज्ञानी जन योग-प्राप्ति के लिए कर्मों में आसक्त हुए बिना कर्म करते हैं. प्रकृति के समस्त जीवों को सम भाव से देखने वाला ही आत्म-साक्षात्कार को प्राप्त होता है (६.०२)

कर्म-फल में आसक्ति का त्याग व निस्वार्थ भाव से कर्म करने की भावना ही मनुष्य को पूर्णता की ओर अग्रसर करती है. (६.०४) मनुष्य अपने मन की सहायता से ही अपना उद्धार या पतन कर सकता है. मन उसी का मित्र होता है जो उस पर नियन्त्रण कर सकता है. जो मन द्वारा नियन्त्रित होता है, मन उस का वैरी हो जाता है (व उसका विनाश कर देता है). (६.०५-०६)

योग-युक्त मनुष्य समस्त जीवों में मुझे व मुझको सब जीवों में देखता है.(६.२९). जो मुझसे निरन्तर जुड़ा रहता है, मैं भी उससे कभी अलग नहीं होता (६.३०) निस्संदेह, हे अर्जुन, मन चंचल होता है और कठिनता से ही वश में होता है, तथापि इसे वैराग्य तथा दृढ़ता-पूर्वक ध्यान आदि के अभ्यास से निश्चय ही वश में किया जा सकता है. (६.३५)

महात्मा अर्जुन ने पूछा– हे जनार्दन, श्रद्धालू व्यक्ति योगभ्रष्ट होने पर किस गति को प्राप्त होता है. (६.३७). हे कृष्ण, इस प्रकार भोग और योग दोनों से वंचित हो कर वह बादल की भांति छिन्न-भिन्न हो कर नष्ट तो नहीं हो जाता. (६.३८)

भगवान श्रीकृष्ण नें कहा– हे महात्मा अर्जुन, योग-मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति न तो इस लोक में और न परलोक में ही दुर्गति को प्राप्त होता है. असफल योगी, पुण्य लोकों में अपनी इच्छानुसार बहुत समय व्यतीत करके, श्रेष्ठ आचरण वाले किसी पुण्यात्मा के घर में पुनर्जन्म लेता है. परन्तु ऐसा जन्म बहुत ही दुर्लभ है. (६.४१-४२) वहाँ उसे पूर्वजन्म में अर्जित ज्ञान की स्मृति प्राप्त होती है और वह अपनी पूर्णता की अधूरी यात्रा पर फिर से चल पड़ता है. (६.४३) इन सबमें जो जन मुझ में श्रद्धा-पूर्वक तल्लीन रहता

है, व मेरी उपासना करता है, वही मेरे मत से सर्वश्रेष्ठ है. (६.४७)

अध्याय ७ : ज्ञान-विज्ञान योग

(अध्याय ७ से १२ तक के ६ अध्यायों में भगवान हमें उनके साथ जीवात्मा के संबध एवं भक्ति के प्रसंग में अपने दिव्य स्वरूप का वर्णन करेंगे. हमें ज्ञात होगा कि ईश्वर किस प्रकार श्रेष्ठ हैं व जीव कैसे उनके आधीन हैं और अपनी विस्मृति के कारण कष्टप्रद स्थिति में हैं. जब पुण्यकर्मों द्वारा जीव को अपनी स्थिति के विषय में ज्ञान का प्रकाश मिलता है, तो किस प्रकार जीव आर्त, दरिद्र, जिज्ञासु या ज्ञान पिपासु के रूप में उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, इसका ज्ञान हमें इन ६ अध्यायों में मिलेगा)

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– हे अर्जुन, सुनो कि तुम किस प्रकार संशय रहित होकर, मुझमें लीन होकर और मुझ पर आश्रित हो कर, मुझे संपूर्ण रूप से पा सकोगे. (७.०१)

मेरी प्रकृति मेरी अपरा शक्ति है. मेरी एक और, चेतन, परा शक्ति भी है, जिससे मैं इस जगत को धारण करता हूं. (७.०५) तुम ऐसा समझो कि समस्त ब्रह्मांड की रचना इन दो शक्तियों (प्रकृति और पुरुष) के संयोग से हुई है. मैं परब्रह्म परमात्मा ही इस ब्रह्मांड की उत्पत्ति का स्रोत हूं और यह सृष्टि मुझमें ही विलय हो जाती है. (७.०६) इस प्रकार हे धनंजय मुझसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है. यह ब्रह्मांड मुझ परब्रह्म में मानो सूत में मणियों की भांति गुंथा हुआ है. (७.०७) प्रकृति की तीन शक्तियाँ– सात्त्विक, राजसिक, व तामसिक, तथा उनसे उत्पन्न राग, द्वेष, मोह आदि– भी मेरे से ही उत्पन्न हुऐ हैं, परन्तु मैं उन के विकारों से रहित हूं. मनुष्य सदा इन तीन गुणों के द्वारा उत्पन्न दोषों से भ्रमित

रहते हैं, इसलिए नहीं जानते कि मैं इन तीनों गुणों से परे अविनाशी परमात्मा हूं. (७.१३)

हे अर्जुन मेरी इस अलौकिक त्रिगुणात्मक माया को पार करना अति दुस्तर कार्य है, परन्तु जो मेरी शरण में आते हैं, वे इसे पार कर जाते हैं और संसार बंधन से मुक्त हो जाते हैं. (७.१४) हे महाबाहो अर्जुन चार प्रकार के मनुष्य मेरी शरण में आते हैं – दुःखी, जिज्ञासु, धनातुर व ज्ञानी. (७.१६)

हे अर्जुन, अनेक जन्मों के पश्चात्, यह ज्ञानोदय होने पर कि मैं ही जगत में विस्तार पूर्वक चारों ओर व्याप्त हूं , मनुष्य मुझे प्राप्त करता है, ऐसा महात्मा विरला ही है. (७.१९)

जो सकाम भक्त, जिस भी देवता की, जिस भी भावना से पूजा करना चाहता है, उसकी उसी देवता विषयक श्रद्धा को मैं स्थिर व अचल कर देता हूं. इस स्थिर श्रद्धा से युक्त वह मनुष्य अपना मनोवांछित फल मेरी कृपा से उस देवता के द्वारा पा लेता है. (७.२२)

अध्याय ८ : अक्षरब्रह्मयोग

हे पुरूषोत्तम, ब्रह्म क्या है, उसका स्वरुप क्या है. अध्यात्म क्या है, कर्म क्या है. नाशवान कौन है. इस नश्वर देह में नित्य रहने वाला कौन है. देवता आदि कौन हैं. आप अविनाशी परमात्मा को स्थिर बुद्धि वाले मनुष्य अन्त समय में भी किस प्रकार याद रख सकते हैं. (८.१-२)

भगवान श्रीकृष्ण बोले– हे अर्जुन, परम अक्षर ही कभी क्षर न होने वाला ब्रह्म है. इसी ब्रह्म की क्रियात्मक

सृजनशक्ति ही कर्म है. प्रत्येक जीवात्मा में परमात्मा का अन्तरात्म भाव ही अध्यात्म है. निरन्तर परिवर्तनशील व क्षर भौतिक शरीरधारी प्रत्येक प्राणी के हृदय में परमात्मा के रूप में स्थित मैं ही आत्मा हूं. इस सृजन-यज्ञ का मैं ही स्वामी हूं. (८.०४) जीव आजीवन जिस भाव का चिन्तन करता है, वही भाव उसे जीवन के अन्तिम क्षण में भी स्मरण रहता है, और वह (मृत्योपरांत) उसी भाव को प्राप्त करता है. (८.०६) इसलिए सदा मुझे व अपने कर्त्तव्य को ही स्मरण रखना चाहिऐ. यदि तुम्हारा मन व बुद्धि सदा मुझमें स्थिर है, तो तुम मुझे अवश्य ही प्राप्त कर सकोगे. (८.०७) जीवन के अन्तिम समय में भी इसी प्रकार तुम अपना चरम् लक्ष्य स्मरण रख पाओगे. अतएव मुझे न केवल सदा सर्वदा स्मरण रखो वरन् अपना ध्येय भी मुझे ही बना लो.

जो भक्त मुझे स्थिर भाव से सर्वदा भजता है, मैं उसे सहज ही प्राप्त हो सकता हूं. (८.१४) स्वर्ग तक के सभी लोकों व ब्रह्मलोक तक पहुंच कर भी मनुष्य आवगमन के बन्धन से मुक्त नहीं होता. परन्तु मेरे परमधाम को पहुंच कर मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता. (८.१६)

अध्याय ९ : शाश्वत-ज्ञान का गूढ़ रहस्य (राजविद्या)

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– तुम जैसे संशयरहित भक्त के हेतू अब मैं परम् गोपनीय, ब्रह्म-ज्ञान के रहस्य को, उजागर करता हूं , जिसे सुन कर तुम आवागमन के दुश्चक्र से मुक्ति पा जाओगे. (९.०१). हे अर्जुन यह तत्त्व-ज्ञान सब विद्याओं का राजा, अत्यन्त पवित्र, सुगम-साध्य, धर्मयुक्त व अविनाशी है. (९.०२)

यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड मेरा ही विस्तार है. सभी जीव मुझ में स्थित हैं, परन्तु मैं उनमें स्थित नहीं हूं. (तात्पर्य यह कि, मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है). (९.०४) मेरे संकल्प के द्वारा उत्पन्न समस्त जीव मुझमें उसी प्रकार स्थित हैं, जिस प्रकार आकाश में सवत्र विचरण करने वाली वायु सदा आकाश में स्थित रहती है, परन्तु आकाश उससे सदा अप्रभावित रहता है. (९.०६) मैं अपनी प्रकृति द्वारा समस्त जीवों को बारम्बार उत्पन्न करता रहता हूं . (९.०८) परन्तु यह रचना मुझे प्रभवित नहीं करती अर्थात इन सबका बार-बार सृजन करते हुऐ भी कर्म मुझे प्रभावित नहीं करता, क्योंकि मैं कर्म से सदा अलिप्त, अनासक्त व उदासीन रहता हूं . (९.०९) मेरी आज्ञा से यह प्रकृति इस सम्पूर्ण चराचर जगत को रचती है व चलायमान रखती है. (९.१०)

जो भक्त अनन्य भक्ति द्वारा निष्काम भाव से मेरा निन्तन करते हैं उन सब का योग-क्षेम मैं स्वयं वहन करता हूं. (९.२२) हे अर्जुन, यद्यपि श्रद्धावान सकाम भक्त अन्य देवताओं का पूजन करते हैं वे भी वास्तव में मेरा ही पूजन करते हैं (९.२३) मुझे यदि कोई एक पत्ता, फूल, फल, या केवल जल भी श्रद्धापूर्वक शुद्ध भाव से अर्पण करता है, तो मैं उसे स्वीकार करके खा लेता हूं. (९.२७) श्रद्धा व प्रेम अर्पण से ही मुझ परमात्मा की कृपा पाई जा सकती है. मुझे पाने के लिऐ किसी और विधि की आवश्यकता नहीं है.

हे अर्जुन, मैं सभी प्राणियों में समभाव रखता हूं. मेरे लिए कोई भी घृणा या प्रेम का पात्र नहीं है. परन्तु जो भक्ति-पूर्वक मुझे भजते हैं, मेरे अन्तरंग हैं (९.२९) यदि कोई घोर पापी भी मुझमें दृढ़ श्रद्धा व निष्ठा रखता है, तो उसे भी साधु ही समझना चाहिए क्योंकि वह मेरी भक्ति में अडिग

है. (९.३०) हे अर्जुन, मेरे भक्त का कभी भी पतन नहीं होता. (९.३१) ऐसा कोई भी पापी या पापकर्म नहीं है, जिसे मैं क्षमा नहीं कर सकता.

मेरी शरण में आ कर प्रत्येक मनुष्य मेरे परमधाम को प्राप्त कर सकता है. (९.३२) हे अर्जुन, सदा मुझमें दृढ़ विश्वास रख, मुझे ही नमस्कार कर और सदा मुझे ही भज. इस प्रकार मुझमें तल्लीन हो कर और मझे अपना आराध्य बना कर तुम अवश्य ही मझे प्राप्त करोगे (९.३४)

अध्याय १० : परमात्मा की महिमा

हे अर्जुन, न तो देवता और न महर्षि ही मेरी उत्पत्ति या महिमा को जानते हैं, क्योंकि इन सभी का भी उद्‌गम मुझमें है. (१०.०२) जो मुझे अजन्मा, अनादि, अनंत व ब्रह्मांड के स्वामी के रूप में जानता है, वही ज्ञानी और पापमुक्त होता है. (१०.०३)

बुद्धि, आत्मज्ञान, मोह, मुक्ति, क्षमा, सत्य, इन्द्रिय-निग्रह व मन-निग्रह, सुख, दुःख, तुष्टि, जन्म, मृत्यु, भय, अभय, अहिंसा, समता, संतुष्टि, संयम, दान, यश, अपयश आदि विविध गुण मेरे ही द्वारा उत्पन्न होते हैं. (१०.०४-०५)

ज्ञानी जन इसे जानते हुऐ, अपना चित्त मुझमें स्थिर करके, श्रद्धा व भक्ति से मेरा पूजन करते हैं. (१०.०८-०९) और मैं उन्हें मुझ तक पहुँचने का ज्ञान प्रदान करता हूं. (१०.१०)

महात्मा अर्जुन ने कहा– हे कृष्ण, आपने मुझे सब कुछ पूर्णतया सत्य ही कहा है. हे प्रभु, न तो देवतागण, और न ही असुरगण आपके ऐश्वर्य को जान सकते हैं. हे

परमपिता, हे सबके उद्गम, हे परमपुरूष और समस्त ब्रह्मांड के स्वामी, एकमात्र आप ही अपने स्वरूप को जानते हैं. (१०.१५).

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा, हे अर्जुन, अब मैं तुम्हे अपने मुख्य वैभव युक्त रूपों का वर्णन करूंगा. (१०.१९). हे अर्जुन, मेरा वैभव असीमित है. समस्त वैभव, तेज, और शक्तियाँ, मेरे ऐश्वर्य के एक लघु अंश मात्र से प्रकट होती हैं. (१०.४२)

अध्याय ११ : ईश्वर का विराट् स्वरूप

महात्मा अर्जुन ने कहा– प्रभु आप वही हैं, जैसा आपने अभी अपना वर्णन किया है, तब भी हे परमात्मा, मैं आपके विराट् रूप का दर्शन करना चाहता हूँ . (११.०३) हे परमेश्वर, यदि आप उचित समझें तो मुझे आप अपने विराट् विश्वरूप के दर्शन कराने की कृपा करें. (११.०४)

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– हे अर्जुन, अब तुम मेरे ऐश्वर्य को, सैंकड़ों, हजारों प्रकार के दैवी और विविध रंगों वाले रूप को देखो. लो समस्त देवताओं, ११ रूद्रों, १२ आदित्यों, ८ वसुओं, (दोनों) अश्विनिकुमारों और ४९ मरूद्गणों को तथा और भी विभिन्न आश्चर्यजनक रूपों को देख लो, जिन्हें ना पहले कभी किसी ने देखा, और ना ही सुना. हे अर्जुन, तुम जो भी (युद्ध-परिणाम आदि) देखना चाहो, उसे तत्क्षण मेरे इस शरीर में देखो.(११.०५-०७) किन्तु तुम मुझे अपने इन मानवीय चक्षुओं (नेत्रों) से देखने में असमर्थ हो, अतः मैं तुम्हें दिव्य चक्षु (दृष्टि) प्रदान करता हूँ, जिससे तुम मेरा ईश्वरीय योग ऐश्वर्य भी देख सकोगे.

(११.०८) महात्मा अर्जुन ने एक साथ विभिन्न रूपों में विभक्त समस्त ब्रह्मांड को भगवान श्रीकृष्ण के हजारों सूर्यों के समान उद्दीप्तमान् शरीर में देखा. (११.१३) अर्जुन बोले– हे देव, मैं आपके शरीर में समस्त देवताओं को, प्राणियों के अनेक समुदायों को, कमल पर बैठे हुए ब्रह्माजी, महादेवजी, समस्त ऋषिगण और दिव्य सर्पों को देख रहा हूं. (११.१५) हे विश्वेश्वर, आपको मैं अनेक हाथों, पेटों, मुखों और नेत्रों से युक्त तथा सब ओर से अनन्त रूपों वाला देखता हूं. हे विश्वरूप, मैं आपके न अन्त को देखता हूं, न मध्य को और न आदि को ही. (११.१६) मैं आपके मुकुट, गदा और चक्र धारण किये सब ओर से प्रकाशमान तेज के पुंज जैसा; प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के समान ज्योति वाले तथा नेत्रों द्वारा देखने में अत्यन्त कठिन और अपरिमित रूप को देख रहा हूं. (११.१७) महात्मा अर्जुन ने कहा– हे प्रभु, आप ही परम ध्येय व ज्ञेय हैं. आप ही इस ब्रह्मांड के आधार हैं. आप ही परमात्मा हैं व इस सनातन धर्म के पालक हैं. (११.१८) हे प्रभु आप ही आदि, मध्य, और अन्त तक स्वर्ग व पृथ्वी के बीच समस्त अवकाश और व्योम में चहु ओर व्याप्त हैं आप के इस अद्‌भुत और भयानक रूप को देख कर तीनों लोकों में भय व्याप्त है. (११.२०) हे महाबाहो, आपके बहुत मुखों तथा नेत्रों वाले, बहुत भुजाओं, जंघाओं तथा पैरों वाले, बहुत पेटों तथा बहुत-सी भयंकर दाढ़ों वाले महान् रूप को देखकर सब प्राणी व्याकुल हो रहे हैं तथा मैं भी व्याकुल हो रहा हूं. (११.२३) हे विष्णु, आकाश को छूते हुये देदीप्यमान, अनेक रंगों वाले फैले हुए मुख और प्रकाशमान विशाल नेत्रों से युक्त आपको देखकर मैं भयभीत हो रहा हूं तथा धीरज और शान्ति नहीं पा रहा हूं. (११.२४) आपके विकराल दाढ़ों

वाले, प्रलय की अग्नि के समान प्रज्वलित मुखों को देखकर मुझे न तो दिशाओं का ज्ञान हो रहा है और न शान्ति ही मिल रही है. इसलिए हे देवेश, हे जगत के पालन कर्ता, आप प्रसन्न हों. (११.२५) आप सब लोकों को प्रज्वलित मुखों द्वारा ग्रास करते हुए सब ओर से चाट रहे हैं; और हे विष्णु, आपका उग्र प्रकाश अपने तेजसे सम्पूर्ण जगत को परिपूर्ण करके तपा रहा है. (११.३०) (कृपया) मुझे यह बतायें कि उग्ररूप वाले आप कौन हैं? हे देवों में श्रेष्ठ, आपको मेरा नमस्कार, आप मुझसे प्रसन्न हों. हे आदि पुरुष, मैं आपको तत्त्व से जानना चाहता हूं, क्योंकि मैं आपका प्रयोजन नहीं समझ पा रहा हूं. (११.३१)

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा— मैं ही मृत्यु हूं, और ब्रह्मांड का विनाशक भी हूं. मैं यहाँ सभी योद्धाओं का काल बन कर आया हूँ. तुम्हारे युद्ध में भाग ना लेने पर भी तुम पाण्डवों के सिवा दोनों सैन्यदलों के सभी योद्धा मारे जाएंगे. (११.३२) इसलिए हे अर्जुन उठो और युद्ध करके यश अर्जित करो. अपने शत्रुओं पर विजय पाओ व निष्कंटक राज्य का उपभोग करो. ये सभी योद्धा मेरे द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं. हे अर्जुन, (इन योद्धाओं के विनाश हेतु, मेरे द्वारा रचित) (इस युद्ध में) तुम तो केवल एक निमित्त मात्र हो. (११.३३)

हे अर्जुन, वेदाध्ययन, तपश्चर्या, दान, और पूजा-पाठ आदि किसी भी मार्ग से मेरे इस रूप में मुझे कोई नहीं देख सकता जिसमें तुमनें अभी मुझे देखा है. (११.५३) केवल अखंड भक्ति से ही मुझे जाना जा सकता है. (११.५४) जो भक्त, सकाम कर्म से मुक्त हो कर, अनासक्त हो कर, सभी जीवों के प्रति प्रेमसिक्त व्यवहार करे, वही मुझे प्राप्त कर सकता है. (११.५५)

अध्याय ः १२ भक्ति मार्ग

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– वे जीव, जो सदा निष्ठापूर्वक मेरे सगुण रूप की भक्ति में निमग्न हैं, वे मेरे परम् भक्त हैं. (१२.०२)

जो (मुझ) अक्षर, अव्यक्त, अदृश्य, सर्वव्यापी, अज्ञेय, नित्य, अचल, निराकार, सनातन, परमात्मा की समस्त इन्द्रियों को वश में करके सभी प्राणियों के प्रति समभाव रखकर, हर अवस्था में पूजा करते हैं, वे भी मुझे प्राप्त करते हैं. (१२.०३-०४)

परमेश्वर के अचिन्त्य, अव्यक्त, निराकार रूप के प्रति मन के आकृष्ट न होने से मनुष्यों के लिए आत्मसाक्षात्कार अति दुरूह हो जाता है, क्योंकि देहधारियों के लिए अव्यक्त, निराकार की कल्पना अत्यन्त दुस्तर होती है. (१२.०५) वे जो मुझ परमेश्वर की अचल व अडिग भक्ति स्वरूप अर्चना करते हैं, अपने समस्त कर्म मुझे अर्पित कर देते हैं, और अविचलित हो कर मेरी पूजा करते हैं, मैं उन्हें शीघ्र ही भवसागर से तार देता हूँ. (१२.०६-७) सच्ची भक्ति वास्तव में परमेश्वर के प्रति अगाध प्रेम ही है. अतएव अपनी चित्तशक्ति को मुझमें स्थिर कर दो. इस प्रकार तुम मुझे अवश्य ही प्राप्त होओगे. (१२.०८) यदि तुम इसमें अपने को असमर्थ पाओ तो मेरे लिऐ कर्म करो, मेरा ध्यान करो, और मेरा ही चिन्तन करो. यदि यह भी ना कर सको तो कोई भी विधि अपना कर या किसी भी देवता में, जो तुम्हे पसन्द है, मुझे धारण करके, उसकी पूजा करो. (१२.०९) यदि कुछ भी ना कर सको तो अपना सम्पूर्ण कर्म मुझे अर्पित कर दो. ऐसा करने से तुम निश्चय ही और सहज ही मुझ तक पहुंच

जाओगे. (१२.१०). यदि तुम अपना कर्म भी मुझे ना दे सको, तो मुझ पर पूर्णतया आश्रित हो जाओ, और कर्मफल की आसक्ति त्याग कर जो कुछ तुम्हें मैं दे दूँ, उसे ही मेरा प्रसाद समझ कर ग्रहण किये जाओ. (१२.११)

अध्यात्म कर्मकांड से बेहतर है, पर अध्यात्म से बढ़ कर ज्ञान और ज्ञान से बढ़ कर ध्यान है. कर्मफल में आसक्ति का त्याग, ध्यान से भी बढ़ कर है. कर्मफल पाने का स्वार्थ छोड़ कर कर्मफल में अनासक्त हो जाओ. (१२.१२)

जो किसी से घृणा नहीं करता, सभी जीवों का मित्र है,

'मैं' और 'मेरा' से मुक्त है, दुःख-सुख में समभाव है, सहिष्णु है, दयालु है, आत्मतुष्ट है, स्थिरबुद्धि है, निश्चयी है, और मन तथा बुद्धि द्वारा जिसकी लगन मुझमें है, वह मुझे प्रिय है. (१२.१३-१४) जो किसी के कष्ट का कारण नहीं बनता, सुख-दुःख से परे है, ईर्ष्यालु नहीं है, और भय व आशंका से मुक्त है, वह मुझे प्रिय है. (१२.१५) जो इच्छा-मुक्त है, बुद्धिमान है, पक्षपात रहित है, और सभी शुभाशुभ कार्यों में कर्त्ता के भाव से सदा मुक्त है, ऐसा भक्तियुक्त मनुष्य मुझे प्रिय है. (१२.१६) जो शत्रु-मित्र दोनों भावों में समान है, मान-अपमान, सर्दी-गर्मी व सुख-दुःख में समभाव है, निन्दा व स्तुति जिसके लिऐ एक समान हैं, मितभाषी है, सदा संतुष्ट है, हर स्थान, देश, गृह में खुश है, ज्ञान में दृढ़ है व मेरी भक्ति में संलग्न है, ऐसा मनुष्य मुझे प्रिय है. (१२.१८-१९) जो मनुष्य भक्ति के इस अमर पथ का अनुगामी है, या इस पथ पर अग्रसर है, या इन गुणों को धारण करने का प्रयत्न करता है, मुझे अत्यधिक प्रिय है. (१२.२०)

अध्याय १३ : क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग

(प्रकृति, पुरूष और चेतना अथवा ब्रह्मांड का शरीर और आत्मा में विभक्त होना)

(इस अध्याय से जीवात्मा व प्रकृति के सम्पर्क व कर्म, ज्ञान और विभिन्न प्रकार की भक्ति के द्वारा जीवात्मा के परमात्मा द्वारा उद्धार की भगवान श्रीकृष्ण द्वारा व्याख्या की गई है. यह शरीर रूपी खेत ही वह क्षेत्र है, जिसमें हम कर्म रूपी खेती करके क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं और रोपे गऐ कर्म रूपी बीजों के अनुसार कर्म-फल पाते हैं. इस बीजमंत्र को जानने वाला क्षेत्रज्ञ कहलाता है)

हे अर्जुन, तू मुझे हर प्राणी का उद्गम जान. मैं सृष्टि का जनक हूं, व मेरे द्वारा उत्पन्न सृष्टि का ज्ञान ही अध्यात्म ज्ञान है (१३.०२)

विनम्रता, दम्भहीनता, अहिंसा, सहिष्णुता, सरलता, गुरु-सेवा, पवित्रता, स्थिरता, आत्मसंयम, इन्द्रिय-दमन, निर्-अहंकार, जन्म-मृत्यु, जरा व रोगों के प्रति जागरूकता, वैराग्य, परिवार की ममता से मुक्ति, मेरी अनन्य व अडिग भक्ति, एकान्तवास की इच्छा, तथा आत्म-ज्ञान को ही परम् ज्ञान मान कर तत्त्व की खोज को ही ज्ञान कहा जाता है. शेष सब कुछ मिथ्या व अज्ञान है. (१३.०९-११)

परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है. (१३.१३) समस्त इन्द्रियों के गुण उसमें हैं, फिर भी वह इन्द्रियों से रहित है. वह सब जीवों के पालनहार हो कर भी उनमें अनासक्त है. वह प्रकृति के तीनों गुणों से अतीत है, अर्थात त्रिगुणातीत है, फिर भी त्रिगुणात्मक माया के स्वामी है. (१३.१४) सभी जड़ व चेतन पदार्थों के बाहर और भीतर स्थित है तथा अति सूक्ष्म होने के कारण वह अज्ञेय व अपरिमेय है. वे अत्यन्त दूर अपने परमधाम में स्थित हैं, परन्तु उतना ही हम सबके निकट हैं.

(१३.१५) वे अविभाज्य हैं, फिर भी सब जीवों में विभाजित प्रतीत होते हैं. वे (जानने योग्य परमात्मा) ज्ञान के लक्ष्य हैं, और सभी जीवों के (कर्त्ता, ब्रह्मारूप) सृष्टिकर्त्ता, (धर्त्ता, विष्णुरूप) पालनकर्त्ता व (व हर्त्ता, रुद्ररूप) संहारक भी हैं. (१३.१६) प्रकृति व पुरुष दोनों आरम्भहीन हैं. मूलप्रकृति से उत्पन्न तीनों गुण, सृष्टि और जीवात्मा ये सब भी अनादि हैं. (१३.१९-२०)

प्रकृति में स्थित जीवात्मा प्रकृतिप्रदत्त त्रिगुणात्मक पदार्थों को, पूर्वसंचित कर्मों के फलस्वरुप बाध्य हो कर, भोगने के कारण ही सुख-दुःख भोगता है, और अच्छी-बुरी योनियों में जन्म लेता है. (१३.२१) इस भौतिक शरीर में जो आत्मा है, वह साक्षी है, मार्गदर्शक है, साथी है, भोक्ता है व नियंत्रक है. (१३.२२) जो कुछ भी इस संसार में चराचर वस्तु-समुदाय है, वह सब प्रकृति व पुरुष के संयोग से ही उत्पन्न होता है. (१३.२६)

जो सब ओर फैले नाश्वान पदार्थों में समभाव से नाशरहित, व नित्य परमात्मा को ही देखता है, वही वास्तव में ईश्वर का दर्शन करता है. (१३.२७) मनुष्य जब परमात्मा को सर्वत्र तथा प्रत्येक जीव में समान रूप से विद्यमान देखता हुआ, अपनी आत्मा में कोई विकार नहीं आने देता और ना ही किसी प्राणी को कोई क्लेश पहुंचाता है, वही दिव्यगति को प्राप्त होता है. (१३.२८) जो यह देखता है कि सारे कार्य प्रकृतिप्रदत्त शरीर द्वारा, ना कि आत्मा द्वारा, सम्पन्न किये जाते हैं, वही वास्तव में यथार्थ देखता है. (१३.३०) जिस प्रकार सूर्य इस ब्रह्मांड को आलोकित करता है, उसी प्रकार आत्मा समस्त प्रकृति को सत्ता-स्फूर्ति देता है (१३.३३)

जो इस प्रकार से ज्ञानचक्षुओं द्वारा क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के भेद को, कि क्षेत्र नाशवान है और क्षेत्रज्ञ अविनाशी है, जान लेता है वह परब्रह्म को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है. (१३.३४)

अध्याय १४ : गुणत्रयविभागयोग

(प्रकृति का त्रिगुणात्मक स्वरूप)

समस्त चराचर पदार्थ, मेरे द्वारा रोपे गए बीज से जड़-भौतिक प्रकृति द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं. (१४.०३) इस भौतिक प्रकृति के तीनों (सतो, रजो, व तमो) गुण, संसर्ग में आने पर, जीव को अपने पाश में कस लेते हैं. (१४.०५)

हे निष्पाप अर्जुन, सतोगुण, निर्मल, शुद्ध व प्रकाशवान होने के कारण जीव को प्रसन्नता व ज्ञान प्रदान करके शरीर के सारे द्वारों को वास्तविक ज्ञान द्वारा आलोकित कर देता है. इन गुणों से जीव अत्यन्त शान्त, सुखी, धीर व गंभीर बन जाता है. रजोगुण असीम आकाक्षां, लोभ व तृष्णा से जन्म लेता है. इसके कारण जीव सदा अधीर हो कर इन्द्रिय-तृप्ति की ओर उन्मुख रहता है. यह गुण अत्यधिक आसक्ति, सकाम कर्म, गहन उद्यम, अनियन्त्रित इच्छा, वासना, व लालसा द्वारा जीव को अपने पाश में बांध लेता है. इससे जीव चंचल, अशान्त, लोभी व भोगी बन जाता है. (१४.०७) अविवेक और अज्ञान से उत्पन्न तमोगुण सब जीवों को मोहित करके प्रमाद, आलस्य, भ्रम, जड़ता, तम, मोह, निद्राधिक्य तथा प्रमत्तता प्रदान करता हुआ जीव को अपने आधीन कर लेता है. इस प्रकार तमोगुणी जीव सम्मूढ़, अविवेकी और तन्द्रालु बन जाता है. (१४.१९)

हे स्वामी, त्रिगुणातीत जीव का आचरण कैसा होता है और किन उपायों से इस अवस्था को प्राप्त हुआ जा सकता है? (१४.२१)

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– जो (सतोगुण से उत्पन्न) प्रकाश, (रजोगुण से उत्पन्न) आसक्ति, और (तमोगुण से उत्पन्न) मोह के उत्पन्न होने पर उनसे घृणा नहीं करता व उनके लुप्त होने पर उनकी इच्छा नहीं करता और यह जान कर कि केवल भौतिक गुण ही क्रियाशील हैं, उदासीन, निश्चल व अविचलित रह कर प्रभु की भक्ति में तत्पर रहता है, वही त्रिगुणातीत है. (१४.२२-२३) जो केवल परमात्मा के पारायण है, सुख-दुःख में उदासीन है, जो मिट्टी के ढ़ेले, पत्थर व स्वर्ण को एक समान देखता है, जो शत्रु-मित्र में समभाव है, धीर है, प्रशंसा व निन्दा को एक समान मानता है, मान-अपमान में भेद नहीं करता, और जिसने सारे भौतिक कार्यों का परित्याग करके कर्म में आसक्ति का त्याग कर दिया है, ऐसा व्यक्ति त्रिगुणातीत है. (१४.२५) जो प्रेम सहित मुझ में पूर्ण समर्पित है और अविचल भक्ति से मेरे पारायण है, तुरन्त प्रकृति के गुणों को लांघ जाता है और निर्वाण प्राप्त करता है. (१४.२६) क्योंकि, उस अविनाशी परब्रह्म का और अमृत का तथा नित्यधर्म और अखण्ड एकरस आनन्द का आश्रय मैं हूं. (१४.२७)

अध्याय १५ : शाश्वत ब्रह्म (द्वारा रचित विश्व जीवन वृक्ष)

(पुरुषोत्तम योग)

वे, जो अभिमान रहित व मोहमुक्त हैं, जो विषयासक्त नहीं हैं, और जो सदैव परमात्मा की भक्ति में उन्मुख हैं, और

जिन्होंने अपनी कामनाओं और सुख-दुःख की विरोधी शक्तियों को जीत लिया है, केवल वे ही ज्ञानी मनुष्य (मेरे) परमधाम को पहुँच पाते हैं. (१५.०५)

शरीर में जीवात्मा मेरा ही नित्य व अभिन्न अंग है. यही आत्मा शरीर की पांचों ज्ञानेन्द्रियों व मन के साथ संयुक्त हो कर उन्हें चेतना प्रदान करता है. (१५.०७)

जैसे हवा फूल से गन्ध को निकालकर एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाती है, वैसे ही जीवात्मा मृत्यु के बाद छः इन्द्रियों को एक शरीर से दूसरे शरीर में ले जाता है. (२.१३ भी देखें) (१५.०८) जीवात्मा इन्हीं पांच इन्द्रियों– श्रवण, स्पर्श, दृष्टि, रस, गन्ध तथा छठी मन – के द्वारा विषयों का आनन्द लेता है. (१५.०९) यत्नपूर्वक साधना में लगे हुऐ मनुष्य ही अपने हृदय में स्थित इस जीवात्मा को तत्त्व से जानते हैं. (१५.११)

मैं सभी प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से आसीन हूं. स्मृति, ज्ञान, व संदेह निवारण भी मुझ से ही होता है. मैं ही सब वेदों द्वारा बताया गया जानने योग्य हूं. मैं ही सब वेदों का कर्त्ता व जिज्ञासु भी हूं. (१५.१५)

इस संसार में जीवों की केवल दो– क्षर (नाशवान) व अक्षर (अविनाशी) श्रेणियाँ हैं. संसार से जुड़े रहने तक वे सब नाशवान हैं, परन्तु आध्यात्मिक जगत् से जुड़ने पर वे अविनाशी हो जाते हैं (सातवें अध्याय के चौथे व पाँचवे श्लोक के अपरा व परा प्रकृति व तेरहवें अध्याय के पहले श्लोक के क्षेत्र व क्षेत्रज्ञ को ही यहाँ पर क्षर व अक्षर कहा गया है. श्वेताश्वतरोपनिषद् में इन्हें अविद्या व विद्या कहा गया है, जिन पर परमात्मा का शासन है). (१५.१६).

इन दोनों से बद्ध व मुक्त जीवों से भिन्न, श्रेष्ठ परब्रह्म नामक एक और सत्ता भी है, जो परमात्मा रूप से क्षर व अक्षर के अन्तर में प्रवेश करके उनका पालन करती है. (१५.१७)

इसी सत्ता को वेदों में पुरुषोत्तम परम ज्ञान, परम सत्य व परमात्मा आदि नामों से जाना जाता है. (१५.१८) ज्ञानी जन इसी पुरुषोत्तम को तत्त्व रूप से जान कर उसकी भक्ति में संलग्न रहते है. (१५.१९) हे अर्जुन, इस प्रकार इस गुह्यतम, परम् गूढ़ रहस्य को मैंने तुझे बताया. इस रहस्य को जान कर मनुष्य बुद्धिमान हो जाता है व उसके सभी कर्त्तव्य रूप प्रयास सफल हो जाते हैं. (१५.२०) (श्री गीता के इस अध्याय में संसार, जीवात्मा व परमात्मा का एकसाथ निरूपण किया गया है, इसलिऐ, इस श्लोक में कहा गया है, कि यह अध्याय 'शास्त्र' है)

अध्याय : १६ दैवी व आसुरी स्वभाव

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– हे अर्जुन, अभय, अन्तःकरण की शुद्धि, ज्ञानयोग में दृढ़ स्थिति, दान, इन्द्रियों का दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, क्रोध का अभाव, त्याग, शान्ति, किसी की निन्दा न करना, दया, विषयों से न ललचाना, कोमलता, अकर्तव्य में लज्जा, चपलता का अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, शरीर की शुद्धि, किसी से वैर न करना, गर्व का अभाव आदि दैवी संपदा को प्राप्त हुए मनुष्य के (छब्बीस) लक्षण हैं. (१६.०१-०३)

हे पार्थ, इस लोक में दो ही जाति के मनुष्य हैं – दैवी और आसुरी. दैवी प्रकृति वालों का वर्णन मैंने विस्तारपूर्वक

किया, अब तुम आसुरी प्रकृति वालों के बारे में सुनो. (१६.०६) आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य "क्या करना चाहिये तथा क्या नहीं करना चाहिये" इन दोनों को नहीं जानते हैं. उनमें न तो बाहर-भीतर की शुद्धि है, न सदाचार और न सत्यभाषण ही. (१६.०७)

वे कहते हैं कि संसार असत्य, आश्रयरहित, बिना ईश्वर के और बिना किसी क्रम से अपने-आप केवल स्त्री-पुरुष के कामुक संयोग से ही उत्पन्न है. इसके सिवा और कोई भी दूसरा कारण नहीं है. (१६.०८) ऐसे (मिथ्या, नास्तिक) दृष्टिकोण से जिनकी बुद्धि नष्ट हो गयी है, ऐसे मन्द बुद्धियुक्त, घोर कर्म करने वाले, अपकारी मनुष्यों का जन्म जगत का नाश करने के लिये ही होता है. (१६.०९) वे दम्भ, मान और मद में चूर होकर; कभी पूरी न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर; अज्ञानवश मिथ्या सिद्धान्तों को ग्रहण करके तथा अपवित्र आचरण धारणकर संसार में रहते हैं. (१६.१०) जीवनभर अपार चिन्ताओं से ग्रस्त और विषयभोग को ही परम लक्ष्य मानने वाले ये लोग ऐसा समझते हैं कि यह विषयभोग ही सब कुछ है. (१६.११) आशा की सैकड़ों बेड़ियों से बन्धे हुए, काम और क्रोध के वशीभूत होकर, विषयों के भोग के लिये अन्यायपूर्वक धन-संचय करने की चेष्टा करते हैं. (१६.१२)

(वे ऐसा सोचते हैं कि) मैंने आज यह प्राप्त किया है और अब इस मनोरथ को पूरा करूंगा, मेरे पास इतना धन है तथा इससे भी अधिक धन भविष्य में होगा. (१६.१३) वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया है और दूसरे शत्रुओं को भी मैं मारूंगा. मैं सर्वसमर्थ (ईश्वर) और ऐश्वर्य को भोगने वाला हूं. मैं सिद्ध, बलवान और सुखी हूं (१६.१४) मैं बड़ा धनी और

अच्छे परिवार वाला हूं. मेरे समान दूसरा कौन है? मैं यज्ञ करूंगा, दान दूंगा और मौज करूंगा. इस प्रकार वे अज्ञान से मोहित रहते हैं. (१६.१५) अनेक प्रकार से भ्रमित चित्त वाले, मोह जाल में फंसे, विषयभोगों में अत्यन्त आसक्त, ये लोग घोर अपवित्र नरक में गिरते हैं. (१६.१६) अपने आपको श्रेष्ठ मानने वाले, घमंडी, धन और मान के मद में चूर रहने वाले मनुष्य अविधिपूर्वक केवल नाममात्र के दिखावटी यज्ञ करते हैं. (१६.१७)

अहंकार, बल, घमंड, कामना और क्रोध के वशीभूत; दूसरों की निन्दा करने वाले ये लोग अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ परमात्मा से द्वेष करते हैं. (१६.१८) ऐसे द्वेष करने वाले, क्रूर और अपवित्र नराधमों को मैं संसार में बार-बार आसुरी योनियों में ही डालता हूं. (१६.१९) हे अर्जुन, वे मूढ़ मनुष्य मुझे प्राप्त न करके जन्म-जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त करते हैं, फिर घोर नरक में जाते हैं. (१६.२०)

काम, क्रोध और लोभ, ये जीव को नरक की ओर ले जाने वाले तीन द्वार हैं, इसलिए इन तीनों का त्याग करना (सीखना) चाहिए. (म.भा. ५.३३.६६ भी देखें) (१६.२१) परनिन्दा एक भयंकर दोष है, जिससे वक्ता का मस्तिष्क विकृत होता है, तथा कोई लाभ भी नहीं होता. अपना शास्त्र-विहित कर्त्तव्य करते हुऐ, सभी मनुष्यों को सदैव ऊपर उठने की कामना रखनी चाहिऐ. (१६.२४)

अध्याय १७ : श्रद्धा के तीन आयाम

(श्रद्धात्रयविभागयोग)

महात्मा अर्जुन ने कहा– हे कृष्ण, वे मनुष्य, जो शास्त्रीयविधान रहित केवल श्रद्धा युक्त होकर देवादि पूजन करते हैं, वे सात्त्विक, राजसिक या तामसिक, क्या कहलाऐ जाऐंगे. (१७.०१)

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– मनुष्यों की श्रद्धा सात्त्विक, राजसिक या तामसिक, किसी भी प्रकार की हो सकती है. अब मैं तुम्हें इनके विषय में (विस्तार पूर्वक) कहूंगा. (१७.०२) हे अर्जुन, मनुष्यों की श्रद्धा उनके कर्मों के प्रभाव से तदानुसार विकसित होती है और इन्हीं के द्वारा मनुष्य पहचाना जाता है. इच्छित पदार्थ का विश्वास पूर्वक चिन्तन करने से मनुष्य वैसा ही गुण अर्जित कर सकता है. (१७.०३) सतोगुणी मनुष्य देवताओं को, राजसी यक्षों व राक्षसों को व तामसिक मनुष्य भूत-प्रेतों को पूजना पसन्द करते हैं १७.०४)

this table was broken, becs it cannot fit the pocket size. another table was deleted. I am not sure whether tables really adds anything extra?? its up to you to decide.

सतोगुणी मनुष्य
❖ आयु, बुद्धि, बल, सुख, प्रसन्नता व स्वास्थय बढ़ाने वाले, रसमय, चिकने व स्थिर भोज्य पदार्थ पसंद करते हैं (१७.०८) ❖ कर्म-फल में आसक्त हुऐ बिना निष्काम भाव से सेवा करते हैं ❖ देवताओं व देवदूतों का पूजन करते हैं

- सबके हित की कामना से सत्य संभाषण करते हैं, व कोमल, संयमित और अत्यन्त मृदुवाणी बोलते हैं.
- वैदिक साहित्य का पारायण करते हैं. (१७.१५)

सतोगुणी व्यक्ति, निर्मल, सरल, व शांत स्वभाव के, भद्र, शिष्ट, कुलीन, दंभ-हीन, उच्च पवित्र व शुद्ध अन्तःकरण वाले संयमी मनुष्य होते हैं. वे कर्त्तव्य-पूर्वक बिना किसी प्रत्युपकार की भावना से सुपात्र को दान देते हैं.

राजसिक मनुष्य
❖ दुःख, चिन्ता और रोगों को बढ़ाने वाले, बहुत कड़वे, गरम, तीखे, रूखे, मसालेदार, दाहकारक, बहुत नमकीन अथवा बहुत मीठे भोज्य पर्दाथों को पसंद करते हैं. (१७.०९) ❖ यक्षों (कुबेरादि) व राक्षसों का पूजन करते हैं. दिखावे के लिए या सम्मान अर्जित करने के लिए, या फिर अनिच्छा-पूर्वक दानादि कर्म करते हैं. वे ये भी नहीं जानते कि ऐसा फल शाश्वत या स्थायी नहीं होता. (१७.१८)

तामसिक मनुष्य
❖ अध-पका,रसरहित (रुखा-सूखा), दुर्गन्ध-युक्त, बासी, उच्छिष्ट (जूठा) और अपवित्र भोजन करते हैं ❖ भूत-प्रेतों की पूजा करते हैं ❖ देश, काल, और पात्र का विचार बिना अथवा पात्र का अनादर या तिरस्कार करके या कुपात्र को दान देते हैं (१७.२२)

- दम्भी, ढ़ोंगी, व अहंकारी होते हैं
- शास्त्र-विरूद्ध कठोर तपस्या व व्रतादि करते हैं
- दूसरों को दुःख पहुंचाना ही उनका प्रिय कार्य है

हे अर्जुन, श्रद्धा-विहीन भाव से किया हुआ यज्ञ, तप या दानादि कर्म, इहलोक व परलोक, दोनों में व्यर्थ जाता है. (१७.२८)

अध्याय १८ : वैराग्य द्वारा आत्मसिद्धि

महात्मा अर्जुन ने कहा– हे प्रभु, मैं सन्यास व त्याग का उद्देश्य व इनका स्वरूप और भेद जानना चाहता हूं. (१८.०१)

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– ज्ञानी लोग भौतिक इच्छाओं पर आधारित कर्मों के त्याग को सन्यास व समस्त कर्मों के अभिलाषित फल के त्याग को ही त्याग कहते हैं. (१८.०२) परन्तु कर्म त्यागना उचित नहीं है. मोहग्रस्त हो कर समस्त निर्दिष्ट कर्त्तव्यों को त्यागना बुद्धिमता नहीं है, क्योंकि यज्ञ, दान व तपस्या कर्मों को तो अवश्य करना चाहिऐ. (१८.०३) निस्संदेह, किसी भी प्राणी के लिए समस्त कर्मों का त्याग करना असंभव है, इसलिए जो प्राणी कर्मफल को त्याग देता है, वही सच्चा त्यागी है. (१८.११)

कर्म के ये पाँच कारण हैं –

- कर्ता का शरीर

- प्रकृति के तीनों गुण, कर्ता
- ११ इन्द्रियाँ (५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, व एक मन)
- पांच प्राण, और
- इन्द्रियों के निर्दिष्ट देव या परमात्मा

मनुष्य अपने शरीर, मन या वाणी से जो भी उचित या अनुचित कर्म करता है, वह इन्हीं पांच कारणों के फलस्वरूप होता है. (१८.१५)

कर्म में प्रवृत्ति की प्रेरणा देने वाले भी तीन कारण हैं ज्ञान, ज्ञेय व ज्ञाता (अर्थात ज्ञान, जानने योग्य व जानने वाला). कर्म करने के तीन ही साधन हैं– ११ इन्द्रियाँ, स्वयं कर्म तथा कर्म करने वाला. (१८.१८)

मानव जीवन के चार करने योग्य कर्म हैं–

- अपना कर्त्तव्य भली-भांति निभाना
- धर्नोपार्जन करना
- इन्द्रिय-निग्रह व इन्द्रियों का सावधानी से उपभोग
- निर्वाण प्राप्त करना

प्रकृति के तीन गुणों के अनुसार ज्ञान, कर्म व कर्त्ता के ३-३ भेद निम्न प्रकार हैं. इन्हे निम्न प्रकार से समझाया गया है. (१८.१९)

प्रकृति के तीन गुण ☞	सात्त्विक	राजसिक	तामसिक

ज्ञान	अनन्त रूपों में विभक्त सारे जीवों में एक ही अविभक्त आध्यात्मिक प्रकृति को देखना (१८.२०)	विभिन्न शरीरों में भिन्न भिन्न प्रकार के जीवों को देखना (१८.२१)	किसी एक ही तुच्छ कार्य को सब कुछ मान कर सत्य को जाने बिना उसमें लिप्त रहना (१८.२२)
कर्म	जो कर्म नियमित हैं और जो आसक्ति, राग-द्वेष से रहित कर्मफल की चाह के बिना किया जाए, वह सात्त्विक कर्म है (१८.२३)	अपनी इच्छा पूर्ती के लिए, प्रयास पूर्वक एवं मिथ्या अहंकार से कार्य करना (१८.२४)	मोहवश ऐसा कर्म करना जो शास्त्रविरूद्ध हो, हिंसापूर्ण हो, और दूसरों को दुःख देने के लिए किया जाऐ (१८.२५)
कर्त्ता (ज्ञाता)	जो भौतिक गुणों के संसर्ग के बिना, अहंकाररहित, संकल्प व उत्साह से कर्म करे व सफलता तथा असफलता में अविचलित रहे वह सात्त्विक कर्त्ता	जो कर्त्ता कर्म व कर्मफल के प्रति आसक्त होकर फल का भोग करे व लोभी, सदा ईर्ष्यालु, अपवित्र, व सुख-दुःख में विचलित होने वाला हो, वह	जो सदैव शास्त्रों के आदेश के विरूद्ध हो, भौतिक वादी, हठी, कपटी व अन्य जनों का अपमान करने में पटु है, और जो आलसी, खिन्न, व कार्य

	कहलाता है (१८.२६)	राजसिक कर्त्ता कहलाता है (१८.२७)	करने में दीर्घ-सूत्री हो वह तामसिक कर्त्ता कहलाता है (१८.२८)

गुणों के अनुसार बुद्धि, संकल्प व सुख के निम्न भेद हैं— (१८.३० से १८.३९)

प्रकृति के तीन गुण	सात्त्विक	राजसिक	तामसिक
बुद्धि	जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य प्रवृत्ति-निवृत्ति, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, भय-अभय, मुक्ति-बंधन को यथार्थ रूप से जान ले, वह बुद्धि सात्त्विक होती है (१८.३०)	जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य धर्म-अधर्म को तथा कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को ठीक प्रकार ना जान सके, वह बुद्धि राजसिक होती है (१८.३१)	जो बुद्धि अज्ञान के कारण अधर्म को ही धर्म मान ले, और इसी प्रकार सब चीजों को उल्टा मान ले, वह तामसिक होती है (१८.३२)
संकल्प	जिस संकल्प के द्वारा केवल परमात्मा को ही जानने के ध्येय से मनुष्य	फल की इच्छा वाला मनुष्य जिस संकल्प के द्वारा धर्म, अर्थ और काम को	बुद्धिहीन मनुष्य जिस धारणा के द्वारा निद्रा, भय, चिन्ता, दुःख और

	मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण करता है, वह संकल्प सात्त्विक है (१८.३३)	अत्यन्त आसक्ति पूर्वक धारण करता है, वह संकल्प राजसिक है. (१८.३४)	लापरवाही को नहीं छोड़ता है, वह संकल्प तामसिक कहा जाता है. (१८.३५)
सुख– मनुष्य को साधना से प्राप्त सुख से सभी दुःखों का अन्त हो जाता है. (१८.३६)	ऐसे आत्मबुद्धिरूपी प्रसाद से उत्पन्न सुख को – जो आरम्भ में विष की तरह, परन्तु परिणाम में अमृत के समान होता है – सात्त्विक सुख कहते हैं. (१८.३७)	इन्द्रियों के भोग से उत्पन्न सुख को – जो भोग के समय तो अमृत के समान लगता है, परन्तु जिसका परिणाम विष की तरह होता है – राजसिक सुख कहा गया है. (५.२२ भी देखें) (१८.३८)	निद्रा, आलस्य और लापरवाही से उत्पन्न सुख को, जो भोगकाल में तथा परिणाम में भी मनुष्य को भ्रमित करने वाला होता है, तामसिक सुख कहा गया है. (१८.३९)

इस लोक में, स्वर्ग में, या देवताओं के मध्य में कोई भी ऐसा नहीं है, जो प्रकृति के तीन गुणों से मुक्त हो (१८.४०) हे अर्जुन, कर्म का विभाजन भी मनुष्य के गुणों से उत्पन्न

स्वभाव के अनुसार चार वर्णों – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र – में किया गया है. (१८.४१)

शम, दम, तप, शौच, सहिष्णुता, सत्यवादिता, ज्ञान, विवेक और आस्तिक भाव – ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं. (१८.४२) शौर्य, तेज, दृढ़ संकल्प, दक्षता, युद्ध से न भागना, दान देना और शासन करना– ये सब क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं. (१८.४३) खेती, गौ-पालन तथा व्यापार – ये सब वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं तथा शूद्र का स्वाभाविक कर्म सेवा करना है. (१८.४४) मनुष्य अपने-अपने स्वाभाविक कर्म करते हुए परम सिद्धि को कैसे प्राप्त कर सकता है, उसे तुम मुझसे सुनो. (१८.४५) जिस परब्रह्म परमात्मा से समस्त प्राणियों की उत्पत्ति होती है और जिससे यह सारा जगत व्याप्त है, उसका अपने कर्म के द्वारा पूजन करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होता है. (९.२७, १२.१० भी देखें) (१८.४६) अपना गुणरहित सहज और स्वाभाविक कार्य आत्मविकास के लिए दूसरे अच्छे अस्वाभाविक कार्य से श्रेयस्कर है, क्योंकि (निष्काम भाव से) अपना स्वभाविक कार्य करने से मनुष्य को पाप नहीं लगता है. (१८.४७) हे अर्जुन, अपने दोषयुक्त सहज स्वाभाविक कर्म का भी त्याग नहीं करना चाहिए; क्योंकि जैसे धुएं से अग्नि लिप्त होती है, वैसे ही सभी कर्म किसी-न-किसी दोष से युक्त होते हैं. (१८.४८) आसक्ति रहित, इच्छा रहित और जितेन्द्रिय मनुष्य संन्यास (अर्थात् सकाम कर्मों के परित्याग) के द्वारा (कर्म के बन्धन से मुक्त होकर) परम नैष्कर्म्य-सिद्धि प्राप्त करता है. (१८.४९)

अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह–

- कर्मफल में अपनी स्वार्थपूर्ण आसक्ति ना रखे

- अपना स्वाभाविक कर्म, अपनी भरपूर क्षमता व दक्षता से, परमात्मा के लिए करे
- अध्यात्म द्वारा अपनी बुद्धि का विकास करे
- दृढ़ता से मन और इन्द्रियों को वश में रखे
- इच्छा-अनिच्छा का त्याग कर दे
- एकान्त प्रिय बने
- मितभोजी बने (अर्थात कम भोजन करे, जितना प्राण-रक्षा के लिए आवश्यक हो)
- मन, वाणी व कर्मेन्द्रियों को संयमित करे
- ममत्व को त्याग दे (मैं, मुझे, और मेरा से बचे)
- अहंकार, बल-प्रदर्शन, क्रूरता, दर्प (घमंड), वासना, क्रोध व स्वामित्व को त्याग दे (१८.५१-५३)

उपरोक्त प्रसन्न चित्त वाला साधक न तो किसी के लिये शोक करता है, न किसी वस्तु की इच्छा ही करता है. ऐसा समस्त प्राणियों में समभाव वाला साधक मेरी पराभक्ति को प्राप्त करता है. (१८.५४) वह सम्पूर्ण श्रद्धा द्वारा मुझे तत्त्व रूप से जान लेता है. (१८.५५) अपने समस्त कर्मों को श्रद्धा व भक्ति द्वारा मुझे अर्पण करके, शान्ति-पूर्वक अपना चित्त मुझ में लगा. (१८.५७)

हे अर्जुन, यदि तुम अहंकार वश मेरे इस उपदेश की अवहेलना करके युद्ध नहीं करोगे, तो तुम्हारा यह सोचना मिथ्या है, क्योंकि तुम्हारा स्वभाव तुम्हे बलात् ही युद्ध में प्रवृत्त कर देगा (१८.५९) हे अर्जुन, तुम अपने स्वाभाविक (युद्ध रूपी) कर्म (के संस्काररूपी बन्धनों) से बंधे हो, अतः भ्रमवश जिस काम को तुम नहीं करना चाहते हो, उसे भी

तुम विवश होकर करोगे. (१८.६०) हे अर्जुन, ईश्वर (अर्थात् श्रीकृष्ण ही) सभी प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित होकर अपनी माया के द्वारा प्राणियों को यन्त्र पर आरूढ़ कठपुतली की तरह घुमाता रहता है. (१८.६१) तुम मुझ में अपना मन लगाओ, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो, मुझे नमस्कार करो. ऐसा करने से तुम मुझे अवश्य ही प्राप्त करोगे. मैं तुम्हें यह सत्य वचन देता हूं, क्योंकि तुम मेरे प्रिय मित्र हो. (१८.६५) सम्पूर्ण धर्मों का (अर्थात् पुण्य कार्यों का भी) परित्याग करके तुम एक मेरी ही शरण में आ जाओ. शोक मत करो, मैं तुम्हें समस्त पापों (अर्थात् कर्म के बन्धनों) से मुक्त कर दूंगा. (१८.६६)

(गीता के) इस गुह्यतम ज्ञान को तपरहित और भक्तिरहित व्यक्तियों को, अथवा जो इसे सुनना नहीं चाहते हों, अथवा जिन्हें मुझ में श्रद्धा न हो; उन लोगों से कभी नहीं कहना चाहिए. (१८.६७) जो व्यक्ति इस परम गुह्य ज्ञान का मेरे भक्तजनों के बीच प्रचार और प्रसार करेगा, वह मेरी यह सर्वोत्तम परा भक्ति करके निस्सन्देह मुझे प्राप्त होगा. उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करने वाला कोई मनुष्य नहीं होगा; और न मेरा उससे ज्यादा प्रिय इस पृथ्वी पर कोई दूसरा होगा. (१८.६८-६९) जो व्यक्ति हम दोनों के इस धर्ममय संवाद का अध्ययन करेगा, उसके द्वारा मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित होऊंगा– यह मेरा वचन है. (१८.७०) तथा जो श्रद्धा पूर्वक –बिना आलोचना किये – इसे सुनेगा, वह भी सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर पुण्यवान लोगों के शुभ लोकों को प्राप्त करेगा. (१८.७१) हे पार्थ, क्या तुमने एकाग्रचित्त होकर इसे सुना? और हे धनंजय, क्या तुम्हारा अज्ञान जनित भ्रम पूर्णरूप से नष्ट हुआ? (१८.७२) अर्जुन बोले– हे अच्युत,

आपकी कृपा से मेरा भ्रम दूर हो गया है और मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया है. अब मैं संशयरहित हो गया हूं और मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा. (१८.७३)

उपसंहार
भगवान श्रीकृष्ण का अन्तिम संदेश

उद्धवजी की प्रार्थना पर भगवान श्रीकृष्ण ने आधुनिक युग के लिए आत्मबोध के जिन अनिवार्य तत्त्वों का वर्णन किया, वे निम्नलिखित हैं–

(१) बिना स्वार्थपूर्ण उद्देश्य के मेरे (प्रभु के) लिए अपनी क्षमता के अनुरूप अपने कर्तव्य का पालन करो. किसी कार्य के प्रारम्भ करने से पहले, कार्य सम्पन्न होने के बाद और निष्क्रिय होते समय भी सदा मेरा स्मरण करो. (२) मनसा-वाचा-कर्मणा सब जीवों में मेरा ही दर्शन करने का अभ्यास करो और मन से सब के सम्मुख झुककर प्रणाम करो. (३) अपनी प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करो और मन, इन्द्रियों तथा श्वासों और भावों की क्रियाओं के माध्यम से प्रतिक्षण अपने भीतर भगवान की शक्ति को देखो, जो तुम्हें मात्र माध्यम के रूप में प्रयोग कर सतत सब कार्य कर रही है.

श्री गीता चालीसा

(दैनिक पाठ के लिए)

ॐ श्री हनुमते नमः

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥१॥
मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले – हे संजय, धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में एकत्र हुए युद्ध के इच्छुक मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने क्या-क्या किया ? (१.०१)

संजय बोले– इस तरह करुणा से व्याप्त, आंसू भरे, व्याकुल नेत्रों वाले, शोकयुक्त अर्जुन से भगवान श्रीकृष्ण ने कहा. (२.०१) श्रीभगवान बोले – हे अर्जुन, तू ज्ञानियों की तरह वातें करते हो, लेकिन जिनके लिए शोक नहीं करना चाहिए, उनके लिए शोक करते हो. ज्ञानी मृत या जीवित किसी के लिए भी शोक नहीं करते. (२.११) जैसे इसी जीवन में जीवात्मा बाल, युवा, और वृद्ध शरीर प्राप्त करता है, वैसे ही जीवात्मा मृत्यु के वाद दूसरा शरीर प्राप्त करता है. इसलिए धीर पुरुष को मृत्यु से घबराना नहीं चाहिए. (२.१३) जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को उतार कर दूसरे नये वस्त्र धारण करता है, वैसे ही जीवात्मा मृत्यु के वाद पुराने शरीर को त्याग कर नया शरीर प्राप्त करता है. (२.२२) सुख-दुःख, लाभ-हानी, और जीत-हार की चिन्ता न करके मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार कर्तव्य कर्म करना चाहिए. ऐसे भाव से कर्म करने पर मनुष्य को पाप (या कर्म का बन्धन) नहीं लगता. (२.३८) केवल कर्म करना ही मनुष्य के वश में है, कर्मफल नहीं. इसलिए तुम कर्मफल की

आसक्ति में न फंसो, तथा अपने कर्म का त्याग भी न करो. (२.४७) कर्मफल की आसक्ति त्याग कर काम करने वाला निष्काम कर्मयोगी इसी जीवन में पाप और पुण्य से मुक्त हो जाता है, इसलिए तू निष्काम कर्मयोगी वन. निष्काम कर्मयोग को ही कुशलता पूर्वक कर्म करना कहते हैं. (२.५०) जैसे जल में तैरती नाव को तूफान उसे अपने लक्ष्य से दूर ढ़केल देता है, वैसे ही इन्द्रिय सुख मनुष्य की बुद्धि को गलत रास्ते की ओर ले जाता है. (२.६७)

वास्तव में संसार के सारे कार्य प्रकृति मां के गुणरूपी परमेश्वर की शक्ति के द्वारा किए जाते हैं, परन्तु अज्ञानवश मनुष्य अपने आपको कर्ता समझ लेता है, तथा कर्मफल के बंधनों से बंध जाता है. मनुष्य तो परम शक्ति के हाथ की केवल एक कठपुतली मात्र है. (३.२७) आत्मा को मन और बुद्धि से श्रेष्ठ जानकर, (सेवा, ध्यान, पूजन, आदि से किए हुए शुद्ध) बुद्धि द्वारा मन को वश में करके, हे महाबाहो, तुम इस दुर्जय कामरूपी शत्रु का विनाश करो. (३.४३)

हे अर्जुन, जब-जब संसार में धर्मकी हानी और अधर्म की बृद्धि होती है, तब मैं, परब्रह्म परमात्मा, प्रकट होता हूं. (४.०७) मेरे द्वारा ही चारो वर्ण अपने-अपने गुण, स्वभाव, और रुचि अनुसार बनाए गए हैं. सृष्टि के रचना आदि कर्म के कर्ता होनेपर भी मुझ परमेश्वर को अविनाशी तथा अकर्ता ही जानना चाहिए, क्योंकि प्रकृति के गुण ही संसार चला रहे हैं. (४.१३) जो मनुष्य कर्म में अकर्म तथा अकर्म में कर्म देखता है वही ज्ञानी, योगी, तथा समस्त कर्मों का करने बाला है. (अपने को कर्ता नहीं मान कर प्रकृति के गुणों को ही कर्ता मानना कर्म में अकर्म तथा अकर्म में कर्म देखना कहलाता है.) (४.१८) यज्ञ का अर्पण, धी, अग्नि, तथा आहुति देनेवाला सभी परब्रह्म परमात्मा

ही है. इस तरह जो सब कुछ परमात्मा स्वरूप देखता है, वह परमात्मा को प्राप्त होता है. (४.२४) कर्मयोग मनुष्य के चित्त और बुद्धि को शुद्ध करके उसके सभी कर्मों को पवित्र कर देता है. ठीक समय आने पर शुद्ध बुद्धि द्वारा योगी ईश्वर का दर्शन करता है. (४.३८)

हे अर्जुन, कर्मयोग की निःस्वार्थ सेवा के बिना शुद्ध संन्यास-भाव, अर्थात सम्पूर्ण कर्मों में कर्तापन का त्याग, प्राप्त होना कठिन है. निष्काम कर्मयोगी शीघ्र ही परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करता है. (५.०६) जो मनुष्य कर्मफल में लोभ और आसक्ति त्यागकर, सभी कर्मों को परमात्मा में अर्पण करता है, वह कमल के पत्ते की तरह पापरूपी जल से कभी लिप्त नहीं होता. (५.१०)

जो मनुष्य सब जगह तथा सब में मुझ परब्रह्म परमात्मा को ही देखता है, और सबको मुझ में ही देखता है, मैं उससे अलग नहीं रहता तथा वह भी मुझ से दूर नहीं होता. (६.३०)

हे अर्जुन, चार प्रकार के उत्तम पुरुष — दुःख से पीडित, परमात्मा को जानने की इच्छा बाले जिज्ञासु, धन या किसी इष्टफल की इच्छा बाले, तथा ज्ञानी — मुझे भजते हैं. (७.१६) अनेक जन्मों के बाद ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर कि "यह सव कुछ कृष्णमय है," मनुष्य मुझे प्राप्त करते हैं; ऐसे महात्मा बहुत दुर्लभ हैं. (७.१६) अज्ञानी मनुष्य मुझ परब्रह्म परमात्मा के — मन, बुद्धि, तथा वाणी से परे, परम अविनाशी — दिव्यरूप को नहीं जानने और समझने के कारण ऐसा मान लेते हैं कि मैं बिना रूप वाला निराकार हूं, तथा रूप धारण करता हूं. (७.२४)

हे अर्जुन, मनुष्य मरने के समय जिस किसी भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है, वह सदा उस भाव के चिन्तन करने के कारण उसी भाव को प्राप्त होता है. (८.०६)

इसलिए हे अर्जुन, तू सदा मेरा स्मरण कर, और अपना कर्तव्य कर. इस तरह मुझ में अर्पण किए मन और बुद्धि से युक्त होकर निःसन्देह तुम मुझको ही प्राप्त होगा. (८.०७) हे अर्जुन, जो मुझ में ध्यान लगा कर नित्य मेरा स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगी को मैं सहज ही प्राप्त होता हूं. (८.१४)

जो भक्तजन अनन्य भावसे चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं, उन नित्ययुक्त भक्तों का योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूं. (९.२२) जो मनुष्य प्रेमभक्ति से पत्र, फूल, फल, जल, आदि कोई भी वस्तु मुझे अर्पण करता है, तो मैं उस शुद्धचित्त वाले भक्त का वह प्रेमोपहार केवल स्वीकार ही नहीं करता, बल्कि उसका भोग भी करता हूं. (९.२६) मुझ में मन लगा, मेरा भक्त बन, मेरी पूजा कर, मुझे प्रणाम कर. इस प्रकार मेरा परायण होने से तू मुझे ही प्राप्त होगे. (९.३४)

मैं ही सबके उत्पत्ति का कारण हूं, और मुझ से ही जगत् का विकास होता है. ऐसा जानकर बुद्धिमान् भक्तजन श्रद्धापूर्वक मुझ परमेश्वर को ही निरन्तर भजते हैं. (१०.०८) हे अर्जुन, जो पुरुष मेरे लिए ही कर्म करता है, मुझ पर ही भरोसा रखता है, मेरा भक्त है, तथा जो आसक्ति रहित और निर्वैर है, वही मुझे प्राप्त करता है. (११.५५) मुझ में ही अपना मन लगा, और बुद्धिसे मेरा ही चिन्तन कर, इसके उपरान्त निःसंदेह तुम मुझ में ही निवास करोगे. (१२.०८) जो पुरुष अविनाशी परमेश्वर को ही समस्त नश्वर प्राणियों में समान भाव से स्थित देखता है, वही वास्तव में ईश्वर का दर्शन करता है. (१३.२७)

जो पुरुष अनन्य भक्ति से मेरी उपासना करता है, वह प्रकृति के तीनों गुणों को पार करके परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के योग्य हो जाता है. (१४.२६) मैं ही सभी प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित हूं. स्मृति, ज्ञान, तथा शंका समाधान

(विवेक या समाधि द्वारा) भी मुझ से ही होता है. समस्त वेदों के द्वारा जानने योग्य वस्तु, वेदान्त का कर्ता, तथा वेदों का जानने वाला भी मैं ही हूं. (१५.१५) काम, क्रोध, और लोभ मनुष्य को नरक की ओर ले जाने वाले तीन रास्ते हैं, इसलिए इन तीनों का त्याग करना चाहिए. (१६.२१) वाणी वही अच्छी है जो दूसरों के मन में अशान्ति पैदा न करे; जो सत्य, प्रिय, और हितकारक हो; तथा जिसका उपयोग शास्त्रों के पढ़ने में हो. (१७.१५)

मुझे श्रद्धा और भक्ति के द्वारा ही जाना जा सकता है कि मैं कौन हूं और क्या हूं. मुझे जानने के पश्चात् मनुष्य मुझ में ही प्रवेश कर जाता है. (१८.५५) हे अर्जुन, ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में स्थित रह कर अपनी माया के द्वारा मनुष्य को कठपुतली की तरह नचाते रहता है. (१८.६१) सम्पूर्ण धर्मों का (अर्थात् पुण्य कार्यों का भी) परित्याग करके तुम एक मेरी ही शरण में आ जाओ. शोक मत करो, मैं तुम्हें समस्त पापों (अर्थात् कर्म के बंधनों) से मुक्त कर दूंगा. (१८.६६) जो पुरुष श्रद्धा और भक्ति पूर्वक (गीता के) इस ज्ञान का मेरे भक्तों के बीच प्रचार और प्रसार करेगा, वह मेरा सबसे प्यारा होगा और निःसन्देह मुझे प्राप्त करेगा. (१८.६८) संजय बोले — जहां भी, जिस देश या घर में, (धर्म अर्थात् शास्त्रधारी) योगेश्वर श्रीकृष्ण तथा (धर्म रक्षा एवं कर्मरूपी) शस्त्रधारी अर्जुन दोनों होंगे; वहीं श्री, विजय, विभूति, और नीति आदि सदा विराजमान रहेंगी. ऐसा मेरा अटल विश्वास है. (१८.७८)

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्
श्रीकृष्णार्पणं अस्तु शुभं भूयात्
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

गीता सार

१. क्यों व्यर्थ चिन्ता करते हो? किससे व्यर्थ डरते हो? कौन तुम्हें मार सकता है? आत्मा न पैदा होती है, न मरती है.

२. जो हुआ, वह अच्छा हुआ, जो हो रहा है, वह अच्छा हो रहा है. जो होगा, वह भी अच्छा ही होगा. तुम भूत का पश्चाताप न करो. भविष्य की चिन्ता न करो. शिर्फ वर्तमान ही चल रहा है. अपना कर्तव्य करते रहो.

३. तुम्हारा क्या गया जो तुम रोते हो? तुम क्या लाये थे जो तुमने खो दिया? तुमने क्या पैदा किया था जो नाश हो गया? तुम कुछ लेकर न आए, जो लिया यहीं समाज से लिया. जो दिया उसी को दिया. खाली हाथ आए, खाली हाथ ही जाओगे. जो आज तुम्हारा है, कल किसी और का था, परसों किसी और का होगा. तुम इसे अपना मान कर मग्न हो रहे हो. बस, यह मोह ही तुम्हारे दुखों का कारण है.

४. परिवर्तन संसार का नियम है. जिसे तुम मृत्यु समझते हो, वही तो नया जीवन देती है. जब मेरा-तेरा, अपना-पराया, छोटा-बडा, मन से हटा दोगे, फिर सब तुम्हारा होगा और तुम सबके होगे.

५. न यह शरीर तुम्हारा है, न तुम इस शरीर के हो. यह शरीर पंच तत्त्व– पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, और वायु से बना है, और इसी मे मिल जायगा. तुम आत्मा हो, जिसका कभी नाश नही होता.

६. तुम अपने आपको भगवान के अर्पित कर दो. यही सबसे उत्तम सहारा है. जो इस सहारे को जानता है, वह भय, चिन्ता, शोक आदी से सदा के लिये मुक्त हो जाता है.

– भगवान श्रीकृष्ण

संदर्भ ग्रंथों की सूची

१ डाक्टर रामानन्द प्रसाद द्वारा लिखित "भगवद्गीता" (इंटरनैट पर उपलब्ध और दिल्ली में मोतीलाल बनारसी दास द्वारा प्रकाशित.)

२ गीता-प्रेस द्वारा प्रकाशित श्रीमद्भगवद्गीता, श्लोकार्थ-सहित तथा पद्म-पुराणान्तर्गत प्रत्येक अध्याय के महात्मय सहित.

३ श्रीमद्भगवद्गीता-यथारूप, अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापक पूज्य श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा लिखित, ISKCON द्वारा प्राप्य.

४ हिन्द पाकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, डाक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन द्वारा लिखित गीता.

५ श्रीमद्भगवद्गीता, सरल सुबोध भाषा भाष्य द्वारा श्री गुरूदत्त द्वारा लिखित, हिन्दी साहित्य सदन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित.

६ गीता ज्ञान, श्री ब्रह्मदत्त वात्सयायन, पुस्तक महल, दिल्ली द्वारा प्रकाशित.

७ गीता-रहस्य, कर्मयोगशास्त्र, बाल गंगाधर तिलक द्वारा लिखित.

८ गीता-दर्पण, स्वामी रामसुखदास जी द्वारा लिखित.

९ गीता-प्रबंध, श्री अरविंद, अरविंद आश्रम, पांडिचेरी.

अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी के उद्देश्य

अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी संयुक्त राज्य अमेरीका में एक पंजीकृत, लाभ-निरपेक्ष, आयकर-मुक्त धार्मिक संस्थान है, जो श्रीमद् भगवद्गीता के माध्यम से मानवता की सेवा करने और जन सामान्य में प्रबुद्धता जागृत करने के ध्येय से १९८४ में स्थापित की गई थी. अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी के लक्ष्य और उद्देश्य निम्नांकित हैं–

१. श्रीमद् भगवद्गीता का अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में प्रकाशन और नाममात्र सहयोग-राशि-मूल्य पर प्रसार करना तथा भारत और अमेरिका से आरम्भ कर विश्वभर में गीता का पुस्तकालयों, अस्पतालों, होटलों, मोटलों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों में वितरण करना, जैसा कि अमेरिकन बाइबिल सोसायटी विश्वभर में बाइबिल का प्रचार-प्रसार करती है.

२. श्रीमद् भगवद्गीता तथा अन्य वैदिक धर्मग्रन्थों की मूल असाम्प्रदायिक सार्वभौमिक शिक्षा का सहज-सरल भाषा में अनुवाद द्वारा प्रसार और उसके लिए देश-देश में सोसायटी की शाखाओं की स्थापना करना.

३. गीता अध्ययन और सत्संग सभाओं की स्थापना में सहयोग और मार्गदर्शन देना तथा युवा, छात्र-वर्ग और व्यस्त व्यावसायिक प्रशासकों एवं अन्य रुचि रखने वालों में गीता का पत्राचार द्वारा निःशुल्क प्रशिक्षण करना.

४. वैदिक ज्ञान के अध्ययन और प्रसार में जुटे अन्य व्यक्तियों तथा लाभ-निरपेक्ष संस्थाओं को प्रेरणा, सहयोग और सहायता देना तथा आध्यात्मिक, तत्त्वज्ञान, ध्यानयोग

आदि पर व्याख्यानों, परिसंवादों और संक्षिप्त पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करना.

५. वेदों, उपनिषदों, गीता, रामायण तथा विश्व के अन्य प्रमुख धर्मग्रन्थों – धम्मपद, बाइबिल, कुरआन आदि – की शाश्वत असाम्प्रदायिक शिक्षा के माध्यम से विभिन्न धर्मों के बीच की खाई को पाटना तथा सब वर्णों, जातियों, धर्मों और वर्गों में एकता पैदा करना एवं मानव जाति में विश्व बन्धुत्व की भावना का प्रसार करना.

Read our English Translation of Gita free from:
http://www.gita-society.com
You can buy it from your local Motilal Banarsidass Publishers. All proceeds go for Gita publication.

American Gita Society is a tax-exempt, non-profit organization. Our objective is to put Gita in all public places such as schools, hospitals, jails, libraries, hotels, and motels. Volunteers are needed for this work. Join us and help a great cause.

American/International Gita Society®
511 Lowell Place, Fremont, Ca. 94536-1805
USA
Phone (510) 791-6953, 6993
Email: gita@gita-society.com

Kindly visit our website
www.gitaInternational.com
For FREE pocket size complete
Gita in English, and Hindi
आप हमें सहयोग दान के लिए
संपर्क स्थापित कर सकते हैं, यदि –

- आप हिंदी या अंग्रेजी के संक्षिप्त संस्करण के वितरण में सहायता करना चाहते हैं.
- आप इसे किसी प्रांतीय भाषा में अनुदित करना चाहते हैं.
- आप अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी की शाखा अपने क्षेत्र में स्थापित करना चाहते हैं.

हमारा पता–
rajiv@gita-socety.com
Rajiv Kumar Bhatnagar
Sector-5, House No. 30
R. K. Puram
New Delhi 110022
Phone, Residence: 11 616 0849
Office: 11 301 1579

गीता पढ़ो, आगे बढ़ो